विपश्यना का प्रथम जेल शिविर

विषय-सूची

प्रस्तावना i

'विपश्यना' का परिचय.....viii

पट १ .....**१**

जेलों में विपश्यना - एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण.....१
(श्री रामसिंहः भूतपूर्व गृह सचिव, राजस्थान)

पट २ .....**६**

विपश्यना साधना शिविर, केंद्रीय कारागृह, जयपुर.....६
(श्री गणेश नारायण व्यास)

अपराधी और विपश्यना ११
(श्री भगवान सिंह साईवाल)

जेलें, अपराधी और विपश्यना.....१५
(श्री हरिश्चंद्र विद्यालंकार)

पट ३ .....**२३**

शिविरार्थियों के अनुभव.....२३

पट ४.....**३६**

बुद्धवाणी सार्थक हुई.....३६

पट ५ .....**५१**

मंगल-मृत्यु ५१

पट ६ .....**५५**

मंगल-धर्म.....५५

पट ७ .....**५८**

शिविर के चित्र.....५८

संके त-सूची

संके त	ग्रंथ
अङ्गुत्तर०	अङ्गुत्तरनिक ाय
इति०	इतिवुत्तक
खुद्दक ०	खुद्दक पाठ
चरिया०	चरियापिटक
जातक ०	जातक पाळि
थेर०	थेरगाथा
थेरअप०	थेरअपदान
थेरी०	थेरीगाथा
मज्झिम०	मज्झिमनिक ाय
विसुद्धि०	विसुद्धिमग्ग
संयुत्त०	संयुत्तनिक ाय
सुत्त०	सुत्तनिपात

[नोट - ये सभी ग्रंथ विपश्यना विशोधन विन्यास, मुंबई द्वारा प्रक ाशित हैं।]

प्रस्तावना

तिपिटक के संयुत्तनिकाय में वर्णन आता है कि एक समय कोसलनरेश प्रसेनजित ने बहुत से नागरिकों को बंदी बना लिया था। इनमें से किन्हीं को रस्सियों से बांध रखा था, किन्हीं को बेड़ियां डलवा रखी थीं और किन्हीं को लोहे की जंजीरों से जकड़ रखा था।

कालांतर में भिक्षुगण ने भगवान बुद्ध को इसकी जानकारी देते हुए कहा - 'भंते! कोसलनरेश प्रसेनजित ने बहुत से नागरिकों को बंदी बना रखा है। किन्हीं को रस्सियों से बांध रखा है, किन्हीं को बेड़ियां डलवा रखी हैं और किन्हीं को लोहे की जंजीरों से जकड़ रखा है।' इस पर भगवान ने कहा कि पंडित जन लोहे, लकड़ी अथवा घास-फूस से बनी हुई वस्तुओं को 'दृढ़ बंधन' नहीं कहते। 'दृढ़ बंधन' कहते हैं 'आसक्तियों' को, और दूसरों से रखी जाने वाली 'अपेक्षाओं' को। यही होते हैं वे बंधन जो ले जाते हैं अधःपतन की ओर, होते भी हैं सूक्ष्म और खुलते भी हैं बड़ी कठिनाई से!

❦❦❦

इसी बात को कल्याणमित्र श्री सत्यनारायण गोयन्काजी भी जेलों में लगने वाले विपश्यना शिविरों के समय समझाते हैं इस प्रकार –

सभी कैदी हैं

"वास्तविकता यह है कि जेल की चहारदिवारी के भीतर रहने वाले ही दुखियारे कैदी नहीं हैं। जेल की दीवारों के बाहर रहने वाले भी दुखियारे कैदी ही हैं। अपने-अपने मनोविकारों की कैद में सब गिरफ्त हैं और दुःखी हैं। कैद की अवधि पूरी होने पर जेल के कैदी छूट जाते हैं, परंतु जेल के भीतर और बाहर रहने वाले इन करोड़ों-अरबों बंदियों को अपने-अपने विकारों की कैद से मुक्त हो सकना अत्यंत कठिन है। यह कैद न जाने कितने जन्मों से सब को बंदी बनाये हुए है और न जाने कितने जन्मों तक बंदी बनाये रखेगी। इस कैद की यंत्रणा असीम है, अगाध है, असह्य है। मनोविकारों के

दूषित स्वभाव-शिकंजे से छुटकारा पाये बिना इस कैद से छुटकारा पाना नामुमकिन है, इस यंत्रणा से छुटकारा पाना असंभव है।

"बाहरी दुनिया में कोई व्यक्ति अपराध करता हुआ पकड़ा जाय अथवा निरपराध होने पर भी संदेह में पकड़ा जाय तो उसे चहारदिवारी के भीतर बंदी के रूप में रहना पड़ता है और परिवार के बिछोह तथा घर की सुख-सुविधा से वंचित रहने की यंत्रणा एक निश्चित अवधि तक सहनी पड़ती है। परंतु भीतर तो प्रतिक्षण अपराध पनप रहा है और प्रतिक्षण भीतर-ही-भीतर सजा भुगती जा रही है। अपने ही अज्ञान के कारण अंतर्मन में एक ऐसा स्वभाव बना लिया गया है जो कि राग-द्वेष की प्रतिक्रिया करता ही रहता है। इस स्वभाव-शिकंजे में सब-के-सब के बल जकड़े हुए ही नहीं हैं, बल्कि इसे क्षण-प्रतिक्षण दृढ़ से दृढ़तर बनाये जा रहे हैं। इस आत्म-निर्मित गिरफ्तारी से कैसे मुक्त हों? इस स्वजनित दुःख से कैसे छुटकारा पायें? विपश्यना के अतिरिक्त अन्य कोई साधन नहीं जो इन गहराइयों तक आबद्ध इस घातक स्वभाव-शिकंजे का भंजन कर सके। चाहे जेल में हों या जेल के बाहर, हर व्यक्ति को इस आंतरिक कैद से मुक्त होना चाहिए। अतः इस वास्तविक मुक्ति के 'विपश्यना-पथ' पर सजग रह कर गंभीरतापूर्वक चलते रहना चाहिए। इसी में सब का मंगल है, इसी में सब का कल्याण है।"

❧❧❧❧

ब्रह्मदेश से भारतवर्ष में कल्याणमित्र गोयन्काजी का आगमन सन १९६९ में हुआ। उस समय इस देश में 'विपश्यना साधना' के बारे में हर कोई अनजान था, क्योंकि यह पिछले लगभग २,००० वर्षों से लोगों की नासमझी के कारण भारत से लुप्त हो चुकी थी।

श्री गोयन्काजी ने इस साधना का प्रथम शिविर मुंबई में दिनांक ३.७.१९६९ को लगा कर इसको पुनर्जीवित किया। इसके उपरांत तो इसके विलक्षण प्रभावों के कारण भारत के विभिन्न प्रदेशों से इन शिविरों की मांग होने लगी और शिविरों का तांता ही लग गया। अंततोगत्वा जेल में भी

शिविर लगने का प्रसंग उपस्थित हुआ। यह शिविर केंद्रीय कारागृह, जयपुर में सन १९७५ में लगा जिसमें ११४ बंदियों ने भाग लिया। अनेक प्रारंभिक कठिनाइयों के बावजूद यह शिविर एक ऐतिहासिक शिविर सिद्ध हुआ जिसका उल्लेख, वस्तुतः, विश्वविख्यात 'गिनीज बुक आफ रिकार्डस (Guinness Book of Records)' में होना चाहिए था। इस पुस्तक में चुन-चुन कर उन घटनाओं को स्थान दिया जाता है जो विश्वभर में अनूठी पायी गयी हों। इस शिविर का अनूठापन इस बात में था कि दिन-रात प्रतिशोध की आग में जलने वाले कितने ही हत्यारे जो आजीवन कारावास भुगत रहे थे शिविर पूरा होते-होते भीतर से एकदम बदल गये। उनमें से कितनों के ही उद्गार इस पुस्तक के पट (३) में प्रस्तुत किये गये हैं। इन्हें पढ़ने से संत कबीर की यह वाणी स्मरण हो आती है -

"पहले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुनि चुनि खात॥"

यही नहीं, सदियों पुराने मुहावरे और लोकोक्तियां भी गलत सिद्ध हो गयीं। यथा -

'लातों के भूत बातों से नहीं मानते।'

Once a knave, always a knave
(बदमाश हमेशा बदमाश ही बना रहेगा।)

Once a junkee, always a junkee
(नशा करने वाला हमेशा नशई ही बना रहेगा।)

Old habits die hard
(पुरानी आदतें मुश्किल से छूट पाती हैं।)

इस पुस्तक में प्रस्तुत हुई सामग्री से बंदी साधकों को किसी-न-किसी रूप में निम्न प्रकार की अनुभूति होना लक्षित होगा:-

● **अहिर्निर्ल्वयिनीन्यायः –**

जैसे कोई सरीसृप अपनी केंचुली छोड़ने के पश्चात उसे अपनी नहीं समझता, वैसे ही किन्हीं-किन्हींबंदी साधकों को लगने लगा कि उनका अब उनकी पुरानी पृष्ठभूमि से कोई वास्ता नहीं रहा है।

● **गोमहिष्यादिन्यायः –**

गाय भी दूध देती है और भैंस भी, परंतु दोनों के दूध में जमीन-आसमान का अंतर होता है। ऐसे ही किन्हीं-किन्हीं के समझ में आ गया कि सांप्रदायिक कर्मकांडों में और विशुद्ध धर्म में भी ऐसा-ही अंतर होता है।

● **कारणनाशेकार्यनाशन्यायः –**

बंदियों को प्रायःकर यह समझ में आ गया कि कारण का नाश कर देने से कार्य का नाश हो जाता है। यही बात अपने भीतरी विकारों पर लागू होती है। प्रतिक्रियाएं करते रहने से ये अस्तित्व में आते हैं और ऐसा करना बंद कर दें तो ये छूमंतर हो जाते हैं।

● **देवासुरसंग्रामन्यायः –**

जब तक मन का पूरी तरह से परिष्कार नहीं हो जाता है, तब तक समय-समय पर मन में चलने वाला अंतर्द्वंद्व देवों और असुरों के संग्राम जैसा लगता है। कभी 'इनकी' जीत, तो कभी 'उनकी'।

● **पतिंवरान्यायः –**

स्वयंवर में उत्तम पति को ग्रहण कर कन्या दूसरों में प्रीति नहीं रखती है। ऐसे ही विपश्यना की ठीक से समझ आ जाने पर साधक का किसी अन्य प्रकार की साधना करने को मन नहीं करता है।

● **सोपानारोहणन्यायः –**

जैसे महल पर चढ़ने वाला व्यक्ति एक सीढ़ी से दूसरी सीढ़ी पर चढ़ता हुआ महल के ऊपर पहुँच जाता है, वैसे ही बंदी साधकों को लगता है कि इस साधना को करते रहने से उनका निरंतर उत्थान होता जा रहा है।

● **धर्मवसन्तागमन्यायः –**

जैसे वसंत ऋतु के आने पर पेड़ों पर नयी-नयी कोंपलें, नये-नये पत्ते, नये-नये फूल आने लगते हैं और सारा वातावरण सुरभित हो उठता है, वैसे ही जब किसी के जीवन में शुद्ध धर्म का प्रवेश होता है तब उसके जीवन में भी अपूर्व उल्लास एवं सुख-शांति का संचार होने लगता है।

❧❧❧

पुस्तक की योजना

इस पुस्तक का शीर्षक है -

'विपश्यना का प्रथम जेल शिविर'।

इस शीर्षक के दो शब्द विशेष महत्त्व रखते हैं - 'विपश्यना' और 'जेल'।

भले ही 'जेल' अंग्रेजी भाषा का शब्द है, इसे हर भारतीय समझता है। इसका उद्गम प्राचीन लैटिन भाषा से होना पाया जाता है जिसका अर्थ होता था - 'पिंजरा' (जो पिंजरेनुमा बैरकों में बंद अभागे बंदियों के संदर्भ में भी ठीक ही बैठता है)।

पाठकगण में से जिन्होंने 'विपश्यना' साधना का अभ्यास कर रखा है उन्हें 'विपश्यना' के बारे में सब कुछ पता होने से वे शीर्षक के महत्त्व को भली प्रकार आंक सकते हैं। परंतु जिन्होंने इसका अभ्यास नहीं किया है उन्हें इसका परिचय प्राप्त कराना अत्यंत आवश्यक है। इसके अभाव में वे इस पुस्तक में प्रस्तुत की गयी सामग्री का सही प्रकार से आकलन नहीं कर

सकते। अतः इस 'प्रस्तावना' के तुरंत पश्चात 'विपश्यना का परिचय' शीर्षक वाला एक छोटा-सा निबंध सम्मिलित कर दिया गया है।

इसके पश्चात इस पुस्तक की सामग्री का निम्न प्रकार से सप्तधा विभाजन किया गया है –

पट १ - इसमें प्रसंग-प्राप्त शिविर के आयोजन की मुख्य भूमिका निभाने वाले माननीय श्री रामसिंह, तत्कालीन गृह सचिव, राजस्थान सरकार का प्रेरणाजनक लेख है। इसमें उन्होंने 'जेलों में विपश्यना' का एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण प्रस्तुत किया है।

पट २ - इसमें शिविर से संबंधित विविध प्रकार की जानकारी देने वाले तीन सारगर्भित लेख प्रस्तुत किये गये हैं। इस जानकारी के अंतर्गत इस शिविर के बारे में किये गये शोधकार्यों पर भी प्रकाश डाला गया है। बहुत पहले ये लेख विपश्यी साधकों के मासिक प्रेरणा पत्र 'विपश्यना पत्रिका' में प्रकाशित भी हो चुके हैं।

पट ३ - इसमें शिविर में भाग लेने वाले बंदियों में से चौबीस लोगों के अनुभव दर्ज हैं। ये सभी हत्याएं करने के आरोप में आजीवन कारावास भुगत रहे थे। इनके अनुभवों से पता चलता है कि समाज के इस हिंसक वर्ग के लोगों पर भी विपश्यना का कैसा विलक्षण प्रभाव पड़ता है।

पट ४ - इसमें शिविरार्थियों के अनुभवों की समीक्षा बुद्धवाणी के संदर्भ में की गयी है। 'विपश्यना' भगवान बुद्ध की देन थी। अतः यह उचित समझा गया कि उनकी वाणी की सार्थकता इन अनुभवों के आधार पर भी आंकी जाय। इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस पट का शीर्षक रखा गया है - 'बुद्धवाणी सार्थक हुई।

पट ५ - इसमें हत्याओं के एक आरोपी को मृत्युदंड दिये जाने का उल्लेख है। विपश्यना के प्रभाव से वह प्रसन्न मुद्रा से कैसे फांसी के तख्ते पर चढ़ गया - यह तथ्य कल्याणमित्र श्री सत्यनारायण गोयन्काजी के उद्‌बोधन से उजागर होता है। उसकी मृत्यु को 'मंगल-मृत्यु' की संज्ञा दी गयी है।

पट ६ - इसमें भगवान बुद्ध द्वारा अनुदेशित अड़तीस मंगल-धर्मों की चर्चा की गयी है जिनके प्रति सजग रह कर कोई भी व्यक्ति अध्यात्म की ऊंची-से-ऊंची अवस्था प्राप्त कर सकता है। ऐसे व्यक्ति से कोई बड़ा दुष्कर्म हो जाय, इसकी संभावना नहीं रहती है। जेल के संदर्भ में इसका विशेष महत्त्व होने से इन धर्मों का समावेश इस पुस्तिका में किया गया है।

पट ७ - इसके अंतर्गत शिविरकाल के चित्रों को उपयुक्त शीर्षकों सहित प्रदर्शित किया गया है।

पाठकवृंद की 'विपश्यना साधना' के प्रति प्रेरणा जगाने की सदाशयता के साथ यह लघु पुस्तिका प्रस्तुत करते हुए –

निदेशिका
विपश्यना विशोधन विन्यास

'विपश्यना' का परिचय

विपश्यना की ध्यान-विधि एक ऐसा सरल एवं कारगर उपाय है जिससे मन को वास्तविक शांति प्राप्त होती है और एक सुखप्रद, उपयोगी जीवन बिताना संभव हो पाता है। 'विपश्यना' से अभिप्राय होता है कि जो वस्तु अथवा स्थिति सचमुच जैसी हो, उसे उसी रूप में जान लेना। आत्म-निरीक्षण द्वारा मन को निर्मल करते-करते ऐसा होने ही लगता है। हम अपने अनुभव से जानते हैं कि हमारा मानस कभी विचलित हो जाता है, कभी हताश, कभी असंतुलित। इस कारणवश जब हम व्यथित हो उठते हैं तब अपनी व्यथा अपने तक सीमित नहीं रखते, दूसरों को बांटने लगते हैं। निश्चय ही इस प्रकार के जीवन-यापन को 'सार्थक' जीवन नहीं कह सकते। हम सब चाहते हैं कि हम स्वयं भी सुख-शांति का जीवन जियें और दूसरों को भी सुख-शांति से जीने दें, पर ऐसा कर नहीं पाते। अतः यही प्रश्न बार-बार मानस में कौंधता रहता है कि आखिर हम 'सार्थक' जीवन जियें तो कैसे?

विपश्यना हमें इस योग्य बनाती है कि हम अपने भीतर शांति और सामंजस्य का अनुभव कर सकें। यह चित्त की व्याकुलता और इसके कारणों को दूर कर चित्त को निर्मल बनाती है। यदि कोई नियमित रूप से इसका अभ्यास करता चला जाय, तो अपने मानस से विकारों को पूरी तरह बहिष्कृत कर के नितांत विमुक्त अवस्था का साक्षात्कार भी कर सकता है।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –

विपश्यना भारत की एक अत्यंत पुरातन ध्यान-विधि है। इसे आज से लगभग २,६०० वर्ष पूर्व भगवान गौतम बुद्ध ने पुनः खोज निकाला था। उन्होंने अपने शासन के पैंतालीस वर्षों में जो अभ्यास स्वयं किया और लोगों को करवाया – यह उसका सार है। उनके समय में बड़ी संख्या में उत्तरी भारत के लोग विपश्यना के अभ्यास से अपने-अपने दुःखों से मुक्त हुए और जीवन के सभी क्षेत्रों में ऊंची उपलब्धियां कर पाये। समय के साथ-साथ यह ध्यान-विधि भारत के पड़ोसी देशों – ब्रह्मदेश, श्रीलंका, थाईलैंड आदि – में

प्रसरित हुई और वहां पर भी इसके ऐसे ही कल्याणकारी परिणाम सामने आये। बुद्ध के परिनिर्वाण के लगभग पांच सौ वर्ष पश्चात विपश्यना की कल्याणकारी विधि भारत से लुप्त हो गयी। दूसरे देशों में भी इस विधि की शुद्धता नष्ट हो गयी। केवल ब्रह्मदेश में इस विधि के प्रति समर्पित आचार्यों की एक कड़ी के कारण यह अपने शुद्ध रूप में कायम रह पायी। पिछले दो हजार वर्षों में वहां के निष्ठावान आचार्यों की परंपरा ने पीढ़ी-दर-पीढ़ी इस ध्यान-विधि को अपने अविकल रूप में बनाये रखा। इसी परंपरा के प्रख्यात आचार्य सयाजी ऊ बा खिन ने लोगों को विपश्यना सिखलाने के लिए सन १९६९ में श्री सत्यनारायण गोयन्काजी को अधिकृत किया।

वर्तमान काल में कल्याणमित्र श्री गोयन्काजी तथा उनके द्वारा मनोनीत सैंकड़ोंसहायक आचार्यों के प्रयत्नों से केवलभारत के ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व के अधिकांशदेशों के लोगों कोभी फिरसे विपश्यना कालाभ मिलने लगा है। सन १९७१ में अपने प्राण छोड़ने से पूर्व सयाजी अपने स्वप्न को साकार होता देख पाये। उनकी प्रबल इच्छा थी कि विपश्यना अपनी मातृभूमि भारत में लौटे और लोगों को अपनी अनेकानेक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करे।उन्हें विश्वास था कि यह भारत से विश्व भर में फैल जायगी और जन-जन का कल्याण करने लगेगी।

श्री गोयन्काजी ने भारत में जुलाई १९६९ से विपश्यना शिविर लगाने आरंभ किये। दस वर्ष बाद उन्होंने विदेशों में भी इसका प्रशिक्षण देना आरंभ कर दिया। वर्तमान में विश्वभर में एक सौ से अधिक 'विपश्यना केंद्र' स्थापित हो चुके हैं जहां विपश्यना का प्रशिक्षण विधिवत दिया जाता है। विपश्यना काअनमोल रत्न, जो सदियों तक ब्रह्मदेश जैसे छोटे-से देश में सुरक्षित रहा, अब उसका संसार-भर में अनेक स्थानों पर लाभ उठाया जा रहा है। उन लोगों की संख्या निरंतर बढ़ रही है जिन्हें स्थायी रूप से सुख-शांति प्रदान करने वाली इस जीवन जीने की कला को सीखने का अवसर मिला है।

अभ्यास –

विपश्यना सीखने के लिए यह आवश्यक है कि किसी योग्यता-प्राप्त आचार्य के सान्निध्य में एक दस-दिवसीय आवासीय शिविर में भाग लिया जाये। शिविर के दौरान साधकों को शिविर-स्थल पर ही रहना होता है और बाहर की दुनिया से संपर्क तोड़ना होता है। उन्हें पढ़ाई-लिखाई से भी विरत रहना होता है और निजी धार्मिक अनुष्ठानों तथा क्रियाकलापों को स्थगित रखना होता है। उन्हें एक ऐसी दिनचर्या में से गुजरना पड़ता है जिसमें दिन में कई बार, कुल मिलाकर लगभग दस घंटे तक, बैठे-बैठे ध्यान करना होता है। उन्हें आर्य मौन का भी पालन करना होता है, जिससे तात्पर्य होता है कि वे अन्य साधकों से बातचीत नहीं करेंगे पर अपने आचार्य से साधना-संबंधी प्रश्नों और व्यवस्थापकों से अपनी भौतिक समस्याओं के बारे में आवश्यकतानुसार बातचीत कर पायेंगे।

प्रशिक्षण के तीन सोपान होते हैं –

पहला – साधक उन कार्यों से दूर रहें जिनसे उनकी हानि होती हो। इसके लिए उन्हें पांच शील पालन करने के लिए कहा जाता है, अर्थात जीव-हिंसा, चोरी, झूठ बोलना, अब्रह्मचर्य तथा नशे-पते के सेवन से विरत रहना। इन शीलों का पालन करने से मन इतना शांत हो जाता है कि अगला कदम उठाना आसान हो जाता है।

दूसरा – पहले साढ़े-तीन दिनों तक अपने सांस पर ध्यान केंद्रित कर 'आनापानसति' नाम की साधना का अभ्यास करना होता है। इससे मर्कट-मन को नियंत्रित करना सरल हो जाता है।

तीसरा – शुद्ध जीवन जीना और मन को नियंत्रित करना – ये दो सोपान आवश्यक हैं और अत्यंत लाभकारी भी। परंतु यदि तीसरा सोपान न हो तो यह शिक्षा अधूरी रह जाती है। तीसरा सोपान है – अंतर्मन की गहराइयों में दबे हुए विकारों को दूर कर मन को नितांत निर्मल बना लेना। यह तीसरा सोपान शिविर के पिछले साढ़े छः दिनों तक विपश्यना के अभ्यास के रूप में होता है। इसके अंतर्गत साधक अपनी प्रज्ञा (अर्थात,

अपना प्रत्यक्ष ज्ञान) जगा कर अपने समूचे कायिक तथा चैतसिक स्कंधों का भेदन कर पाता है। दिन में काम करते हुए मन में उठने वाले अधिकांश संशयों का सायंकालीन प्रवचनों के दौरान खुलासा कर दिया जाता है जिससे साधनाभ्यास में कहीं कोई कठिनाई नहीं आती है। किसी को हो भी, तो आचार्य से मिल कर समाधान करवा सकता है।

मंगल-मैत्री – पहले नौ दिन पूर्ण मौन का पालन करना होता है। दसवें दिन 'मंगल-मैत्री' अथवा 'पुण्य-वितरण' की एक नयी साधना सिखलायी जाती है। इसके द्वारा विपश्यना के अभ्यास से निर्मल हुए चित्त को प्राणिमात्र के प्रति मंगलभावों से भर कर उन्हें अपने अर्जित पुण्य का भागीदार बनाया जाता है। इसके उपरांत साधक अपना मौन खोल देते हैं और आपस में बातचीत कर पाते हैं। इस प्रकार वे फिर बहिर्मुखी हो जाते हैं।

शिविर ग्यारहवें दिन प्रातःकाल समाप्त हो जाता है। शिविर का समापन भी मंगल-मैत्री के साथ किया जाता है और यह भली प्रकार बतलाया जाता है कि अपने-अपने घर जाकर नित्यप्रति साधना का अभ्यास कैसे करना चाहिए, क्योंकि इस साधना का नियमित अभ्यास ही सुफल प्रदान कराता है।

शिविरों का आयोजन –

विभिन्न देशों में विपश्यना शिविर नियमित रूप से स्थायी केंद्रों पर अथवा अन्य स्थानों पर भी लगाये जाते हैं। सामान्य दस-दिवसीय शिविरों का आयोजन तो होता ही रहता है, परंतु साधना में आगे बढ़े हुए साधकों के लिए समय-समय पर विशिष्ट शिविर और २०, ३०, ४५ अथवा ६० दिन के दीर्घ शिविर भी लगाये जाते हैं।

विश्व भर में शिविरों का संचालन स्वैच्छिक दान से होता है। किसी से कोई पैसा नहीं लिया जाता। शिविरों का पूरा खर्च उन साधकों के दान से चलता है जो पहले किसी-न-किसी शिविर से लाभान्वित होकर दान देकर बाद में आने वाले साधकों को लाभान्वित करना चाहते हैं। न तो आचार्य और न ही उनके सहायक आचार्य कोई पारिश्रमिक प्राप्त करते हैं। ये तथा शिविरों में सेवा देने वाले पुराने साधक अपना समय देने के लिए स्वतः आगे

आते हैं। यह परिपाटी उस शुद्ध परंपरा से मेल खाती है जिसमें यह शिक्षा बिना किसी वाणिज्यिक आधार के, मुक्त-हस्त से और कृतज्ञता तथा दान की भावना से ओतप्रोत धनराशि के आधार पर बांटनी होती है।

सांप्रदायिकता-विहीन विधि –

चाहे विपश्यना बौद्ध परंपरा में सुरक्षित रही है, फिर भी इसमें कोई सांप्रदायिक तत्त्व नहीं है और किसी भी पृष्ठभूमि वाला व्यक्ति इसे अपना कर लाभान्वित हो सकता है। इस साधना के दो आलंबन हैं -

❶ अपना नैसर्गिक सांस जो जन्म लेने से लेकर प्राण छोड़ने तक हर समय हर किसी के पास उपलब्ध रहता है।

❷ अपने शरीर पर हर समय प्रकट होने वाली विविध प्रकार की संवेदनाएं। इन्हें साक्षीभाव से देखने का नियमित अभ्यास करते रहने से मन में संचित विकृतियों से छुटकारा होने लगता है और आगे के लिए मन को विकृत न करने का रास्ता मिल जाता है। ये दोनों ही आलंबन ऐसे हैं जिन पर काम करने में किसी को लेशमात्र भी ऐतराज नहीं हो सकता। इस प्रकार यह साधनाविधि सर्वथा सांप्रदायिकता-विहीन है और शुद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करती है।

विपश्यना के शिविर ऐसे व्यक्ति के लिए हमेशा खुले रहते हैं जो ईमानदारी के साथ इस विधि को सीखना चाहे। इसमें कुल, जाति, धर्म अथवा राष्ट्रीयता आड़े नहीं आती। हिंदू, सिक्ख, जैन, बौद्ध, मुस्लिम, ईसाई, यहूदी तथा अन्य संप्रदाय वाले आज तक बड़ी सफलतापूर्वक विपश्यना का अभ्यास करते आये हैं। इनको जल्दी ही यह आभास होने लगता है कि इस साधना के अभ्यास से उनके व्यक्तित्व में निखार आने लगा है और वे बेहतर इंसान बनते जा रहे हैं।

विपश्यना तथा सामाजिक परिवर्तन –

विपश्यना की ध्यान-विधि एक ऐसा रास्ता है जो सभी दुःखों से छुटकारा दिलाता है। इससे राग, द्वेष और मोह दूर होते हैं और यही हमारे दुःखों का

कारण हैं। जो कोई इसका अभ्यास करते रहते हैं, वे थोड़ा-थोड़ा करके अपने दुःखों का कारण दूर करते रहते हैं और बड़ी दृढ़ता के साथ अपने मानसिक तनावों की जकड़न से बाहर निकलकर सुखी, स्वस्थ और सार्थक जीवन जीने लगते हैं। इस तथ्य की पुष्टि अभी तक किये गये कितने-ही प्रयोगों से होती है।

ये प्रयोग इस बात को उजागर करते हैं कि समाज में परिवर्तन लाने के लिए पहले व्यक्ति को पकड़ना चाहिए, याने प्रत्येक व्यक्ति को सुधरना चाहिए। केवल उपदेशों से सामाजिक परिवर्तन नहीं लाया जा सकता। छात्रों में भी अनुशासन तथा सदाचार केवल किताबी ज्ञान और व्याख्यानों से नहीं ढाला जा सकता। केवल दंड के भय से अपराधी अच्छे नागरिक नहीं बन सकते और न ही दंडात्मक मानदंड अपना कर सांप्रदायिक फूट को दूर किया जा सकता है। ऐसे प्रयत्नों की विफलता से इतिहास भरा पड़ा है।

वस्तुतः, 'व्यक्ति' ही वास्तविक कुंजी है। उसके साथ वात्सल्य एवं करुणा का बर्ताव किया जाना चाहिए। उसे अपने आपको सुधारने के लिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। शील-सदाचार के नियमों का पालन करवाने के लिए उसे उपदेश नहीं, बल्कि उसके भीतर अपने आप में परिवर्तन लाने की सच्ची ललक जगानी चाहिए। उसे सिखलाना चाहिए कि अपनी खोज-बीन कैसे की जाती है, ताकि एक ऐसी प्रक्रिया हाथ लग जाय जिससे परिवर्तन का क्रम शुरू होकर चित्त निर्मल हो सके। इस प्रकार लाया हुआ परिवर्तन ही चिरस्थायी हो सकता है।

'विपश्यना' में लोगों के मानस और चरित्र को बदलने की अपूर्व क्षमता है। जो कोई सचमुच इसके लिए प्रयास करना चाहे, उसके लिए स्वर्णिम अवसर सदा-सदा उपस्थित है।

राग द्वेष से मोह से, जो मन मैला होय।
विपश्यना के नीर से, विरज विमल फिर होय॥

मन की गांठों में उलझ, व्याकुल हैं सब लोग।
मन की गांठें सुलझतीं, विपश्यना के योग॥

बाहर बाहर खोजते, दुखिया रहा जहान।
अंतर में ही ढूंढ ली, सुख की खान खदान॥

पट १

जेलों में विपश्यना - एक ऐतिहासिक पर्यवेक्षण

(श्री रामसिंहः भूतपूर्व गृहसचिव, राजस्थान)

लेखक का परिचय

राजस्थान सरकार के गृह सचिव के रूप में अपने विभिन्न महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों को निभाते हुए श्री रामसिंह ने दस दिन का अवकाश लेकर सन १९७५ में कल्याणमित्र श्री सत्यनारायण गोयन्काजी के सान्निध्य में लगे एक विपश्यना शिविर में भाग लिया। इससे पूर्व विपश्यना शिविर से लाभान्वित उनके एक मित्र में आये परिवर्तनों को देख कर वे बहुत प्रभावित हुए थे।

श्री रामसिंह को अपने अनुभव से तत्काल आभास हुआ कि यह ध्यान-विधि बहुत प्रभावशाली है और व्यक्तियों तथा संस्थाओं में सकारात्मक परिवर्तन लाने की इसमें अपूर्व क्षमता है। उन्होंने पाया कि यह विधि शीघ्र सुपरिणामदायी, वैज्ञानिक और असांप्रदायिक है और यह भी अनुभव किया कि प्रशासन में परिवर्तन व सुधार लाने के लिए 'विपश्यना' एक अचूक उपाय है। अतः उन्होंने गृह विभाग के कुछ एक अधिकारियों को विपश्यना शिविर में भाग लेने के लिए प्रेरित किया और उनके सहयोग से अपने विभाग का पुनर्गठन किया।उन्होंने जयपुर के केंद्रीय कारागृह तथा राजस्थान पुलिस अकादमी में शिविर लगवाये, जो अत्यंत सफल रहे। स्वयं अपनी साधना की निरंतरता के साथ-साथ अपने सहयोगियों व मित्रों को भी विपश्यना शिविरों से लाभान्वित होने के लिए प्रेरित करते रहे।

प्रशासनिक सेवा से निवृत्ति के पश्चात वे 'राजस्थान लोक सेवा आयोग' के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त हुए। आयोग की सेवा से निवृत्ति के पश्चात उन्हें आर्थिक दृष्टि से लाभकारी तथा विस्तृत उत्तरदायित्वों वाले कई अन्य सरकारी व गैर-सरकारी प्रस्ताव मिले जिन्हें अस्वीकार करते हुए उन्होंने विपश्यना के माध्यम से लोगों की धर्मसेवा करने के निमित्त अपना शेष जीवन समर्पित करने का निर्णय किया।

श्री गोयन्काजी का प्रथम जेल शिविर सन १९७५ में राजस्थान के केंद्रीय कारागृह में लगा। उस समय मैं उस राज्य का गृह सचिव था और मैंने भी विपश्यना का एक शिविर कर लिया था। इसके फलस्वरूप मुझे भी अपने जीवन में अप्रत्याशित परिवर्तन होने का आभास हुआ। शिविर के चौथे दिन मुझे लगा कि विपश्यना एक ऐसी विधि है जिससे न केवल व्यक्तिगत समस्याओं का ही, बल्कि सामाजिक समस्याओं का भी, समाधान हो सकता है और यही नहीं, सरकारी तंत्र में भी सुधार लाया जा सकता है। चौथे दिन सायंकाल मैं गोयन्काजी से मिला और उन्हें अपने मंतव्य से अवगत कराया। मैंने उनसे पूछा कि क्या यह विधि सरकार की शासन-प्रणाली में परिवर्तन लाने में कारगर सिद्ध हो सकती है। उन्होंने अपनी सहमति जतलायी। इस पर मैंने उनसे तुरंत पूछ लिया कि क्या हम जेल में शिविर का आयोजन कर सकते हैं? वे बहुत सकारात्मक थे और उन्होंने कहा कि यदि इसका आयोजन हो सकता हो तो वे इसके लिए चले आयेंगे। तब यह लगा कि यह एक बहुत बड़ी चुनौती है!

मैंने अपने इस प्रस्ताव से संबंधित अधिकारियों से बातचीत करने का सिलसिला शुरू किया। ये लोग थे – राज्य के मुख्य मंत्री, मुख्य सचिव तथा जेल के अधिकारी। प्रारंभ में तो हर किसी को कुछ-न-कुछ संशय रहा, पर अंततः यह प्रयोग कर डालने का निर्णय ले ही लिया गया!

वास्तविक कठिनाई तब आयी जब श्री गोयन्काजी शिविर लेने के लिए जयपुर आ पहुँचे। मुझे उन्हें बतलाना पड़ा कि शिविर के दौरान उन्हें जेल में रखना संभव नहीं हो पायगा। इसके स्थान पर उनके लिए जेल के बाहर एक सुंदर बंगले का प्रबंध किया जायगा। उन्होंने व्यक्त किया कि उन्हें तो प्रतिदिन चौबीसों घंटे जेल के भीतर ही रहना होगा क्योंकि विपश्यना एक पैनी शल्यक्रिया है और वे एक शल्यचिकित्सक के मानिंद हैं। पर इसमें बाधा थी 'जेल मैन्यूअल'। जेल में केवल वही रह सकते थे जिन्हें सजा मिल चुकी हो, या जिनके मामले अभी न्यायालय के विचाराधीन हों, या जो कोई जेल के कर्मचारी हों। मैंने गोयन्काजी के सामने यह समस्या रखी। इस पर वे बोल उठे – 'तो मुझे सजा दे दो!' यह सुन कर मैं भौंचक्का रह गया और

मुझे बड़ा आघात भी पहुँचा - मेरे आचार्य को कैसे दंडित किया जा सकता है! न्यायिक विभाग से परामर्श किया गया और ऐसे लगता था कि इस समस्या का कोई समाधान नहीं है। इस पर हमने प्रशासकीय आदेश प्रसारित करके इस समस्या का निस्तारण किया।

गोयन्काजी को जेल की डिस्पेंसरी में एक कामचलाऊ कमरे में रहने की अनुमति दे दी गयी। अन्य समस्या तब आयी जब शिविर आरंभ होने ही जा रहा था। उन दिनों गंभीर अपराधियों को पांवों में बेड़ियां और हाथों में हथकड़ियां डाली जाती थीं। लोहे की बेड़ियों और हथकड़ियों से जकड़े हुए चार ऐसे बंदियों को ध्यानकक्ष में लाया गया। गोयन्काजी पास ही टहल रहे थे। उन्होंने जब यह देखा तो उन्हें बड़ा अचंभा हुआ। उन्होंने मुझसे पूछा कि यह क्या है? मैंने उन्हें बतलाया कि ये गंभीर अपराधी हैं। इस पर वे बोले - 'मेरे समक्ष बेड़ियों में जकड़े हुए लोग कैसे बैठाये जा सकते हैं? ऐसा नहीं हो सकता। बेड़ियां हटा दो!

कारागृहों के महानिरीक्षक ने कहा कि जेल की सुरक्षा का उत्तरदायित्व उनका है और वह पांवों की बेड़ियां तथा हथकड़ियां नहीं हटा सकते।परंतु गोयन्काजी भी अपनी बात पर दृढ़ थे। उन्होंने कहा कि जब लोग उनके सामने बेड़ियों में जकड़े हुए बैठे हों तब वे धर्म नहीं सिखा सकते –वे तो बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए आये हैं। महानिरीक्षक ने कहा कि वे अंदर की बेड़ियां तो हटा सकते हैं पर बाहर की नहीं। पर गोयन्काजी इसी बात पर बल देते रहे कि ध्यान करने वालों को बेड़ियां नहीं लगी होनी चाहिएं। यह एक बड़ी दुविधा थी, एक भारी समस्या!

महानिरीक्षक एक अत्यंत अनुभवी अधिकारी थे। उन्होंने मुझे कहा कि उन बंदियों के लिए उन्हें सुरक्षा नियमों में ढील देने के लिए बाध्य न किया जाय। उनका कहना था कि इन्हीं में से कोई 'हीरो' (Hero) बनने की चेष्टा भी कर सकता है और आनन-फानन में मेरा या गोयन्काजी का गला घोंट कर हमें मौत के घाट उतार सकता है। हमने इस समस्या के बारे में विचार-विमर्श किया और अंततः यह सहमति रही कि बेड़ियों और जंजीरों को निकाल ही दिया जाय। एक हथियारबंद संतरी को किसी ऐसे महत्त्वपूर्ण

स्थान पर तैनात कर दिया जाय जो आक्रामक रुख से आगे बढ़ने वाले किसी भी अपराधी पर तुरंत गोली दाग सके। मैंने महानिरीक्षक को परामर्श दिया कि अपनी ओर से वे यह सुनिश्चित कर लें कि कोई दुर्घटना घटित न हो और न ही आतंक पर आधारित किसी प्रकार की गोलाबारी हो।

तदुपरांत बंदियों की बेड़ियां खोल दी गयीं। इससे गोयन्काजी प्रसन्न हुए। शिविर प्रारंभ हुआ। मैं पास ही बैठ गया। महानिरीक्षक ध्यानकक्ष के बाहर ठहर गये, पर निकट ही बने रहे। मेरी आंखें उन 'चारों' पर टिकी हुई थीं, हृदय धड़क रहा था और गहरी चिंता संजोये हुए था। पर हर बीतने वाला क्षण राहत बे-इंतहा मुहय्या कर रहा था। जैसे ही गोयन्काजी ने चांटिंग शुरू की, उनकी अपार मैत्री प्रवाहित होने लगी। इस सारी खलबली के कारणभूत अपराधियों की उत्तेजित आंखों के तेवर बदलने लगे और उनके चेहरे दमकने लगे। उनकी गालों पर अश्रुधारा बहने लगी। मेरे चेहरे पर भी आंसू ढुलकने लगे। इतने तनाव के पश्चात प्रसन्नता से परिपूर्ण यह एक दुर्लभ क्षण था। इससे विपश्यना की क्षमता निर्विवाद हो गयी। मेरे मानस में गोयन्काजी द्वारा सुनाई जाने वाली अंगुलीमाल की कथा का वृत्तांत कौंध गया।

एक अन्य घटना भी घटित हुई जो नितांत मर्मस्पर्शी थी। दो बंदी ऐसे थे जो मृत्युदंड की बाट जोह रहे थे। उन्हें शिविर में लिया जाना संभव नहीं था। प्रातःकालीन भ्रमण के समय गोयन्काजी उनकी कोठरियों के पास से गुजरे और उन्होंने निर्णय किया कि उन्हें ध्यानकक्ष से लाउडस्पीकर के माध्यम से आनापान और विपश्यना का प्रशिक्षण दे दिया जाय। हम भी इससे सहमत हुए। उन्होंने ध्यान करना आरंभ किया, इसमें खूब प्रगति की और अत्यंत प्रसन्न हुए। वे अपनी कोठरियों में प्रवचन सुनते जैसे अन्य भी बहुतेरे लोग सुना करते थे। हमने जेल के समूचे परिसर में प्रवचनों के प्रसारण की व्यवस्था कर रखी थी।

जब शिविर पूरा हुआ तब मुझे एक मृत्युदंडप्राप्त बंदी ने यह संदेश भिजवाया कि उसने भारत के राष्ट्रपति को प्रस्तुत अपनी दया-याचिका को वापिस लेने का निर्णय लिया है। वह मरने के लिए तैयार है। अब उसके पास धर्म है और वह अपनी सिर-पर-सवार मृत्यु के प्रति सर्वथा निर्भीक है! इसी

बीच में उसकी याचिका भी निरस्त हो गयी और फांसी के तख्ते पर लटका कर उसे प्राणदंड देने की तिथि भी निश्चित कर दी गयी। यह दुःखद वाकया देखने के लिए मुझे भी निमंत्रण दिया गया। बंदी अपनी कोठरी से मुस्कराते हुए बाहर निकला। उस समय उसका मनोबल खूब बुलंदी पर था। उसने जेल के कर्मचारियों को धन्यवाद दिया और फांसी के तख्ते की ओर ऐसी प्रफुल्लता के साथ आगे बढ़ गया जैसा पहले कभी देखने में नहीं आया।

[इसी घटना के बारे में कल्याणमित्र गोयन्काजी का उद्‌बोधन पट (५) पर देखा जा सकता है।]

❧❧❧❧

जयपुर के केंद्रीय कारागृह में दूसरा शिविर वर्ष १९७७ में लगा। यह शिविर भी अत्यंत सफल रहा। तब मेरा स्थानांतर एक अन्य विभाग में हो गया। मेरे उत्तराधिकारी के मत में साधना शिविरों के आयोजन से अपराध को रोकने की दंड की प्रभावकारिता पर अंकुश लग जाता है, अतः यह कार्यक्रम आगे नहीं चल पाया। मेरी उत्कट अभिलाषा थी कि वहां विपश्यना की पुनरावृत्ति हो। मैंने गोयन्काजी से इस बारे में पूछा तो उन्होंने कहा कि विपश्यना का बीजारोपण हो चुका है और किसी न किसी दिन यह फिर फूटेगा। मैं प्रतिवर्ष जाकर उनसे निवेदन किया करता कि इस मूल्यवान अनुभव की पुनरावृत्ति नहीं हो पा रही है। पर वे यही कहा करते कि चिंता मत करो, कभी-न-कभी इसका समय आयगा ही।

❧❧❧❧

[आखिर समय पका। अंकुर फूटा और खूब अच्छी तरह से फलीभूत हुआ। वर्ष १९९० में जयपुर के केंद्रीय कारागृह में फिर विपश्यना शिविर लगा जो अत्यंत सफल रहा। इस शिविर का विस्तृत विवरण 'हुआ उजाला धर्म का' नामक पुस्तक में प्रकाशित भी हुआ।

इसके पश्चात भारत में ही नहीं, विदेशों में भी विपश्यना शिविर लगने लगे और निरंतर लगते ही जा रहे हैं। इस प्रकार मेरे आचार्य की भविष्यवाणी अमोघ सिद्ध हुई है।]

पट २

- *विपश्यना साधना शिविर, केंद्रीय कारागृह, जयपुर (श्री गणेश नारायण व्यास)*
- *अपराधी और विपश्यना (श्री भगवान सिंह साईवाल)*
- *जेलें, अपराधी और विपश्यना (श्री हरिश्चंद्र विद्यालंकार)*

विपश्यना साधना शिविर, केंद्रीय कारागृह, जयपुर

[श्री गणेश नारायण व्यास, तत्कालीन उप शासन सचिव, गृह (जेल) विभाग, राजस्थान]

(श्री व्यास राजस्थान सरकार द्वारा गठित 'शिविर प्रबंध समिति' के सदस्य-सचिव थे। नीचे अंकित प्रतिवेदन उनके द्वारा राज्य सरकार को प्रस्तुत किया गया था।)

प्रायः अपराध का आरंभ मानसिक तनाव एवं मन की मलिनता है। जेल के अपराधियों को इस तनाव को कम करने की कोई सुविधा नहीं मिलती और यह तनाव उनके मन की निरंतर अशांति का कारण रहता है। कारागृह जीवन का मुख्य उद्देश्य बंदियों को एक संभ्रांत व्यक्ति के रूप में समाज को वापिस देना है। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर केंद्रीय कारागृह, जयपुर में 'विपश्यना साधना शिविर' का आयोजन किया गया जिसके द्वारा उसमें भाग लेने वाले बंदी अपनी मन की मलिनता को दूर करके मानसिक तनाव से छुटकारा पा सकें। यह साधना २,५०० वर्ष पूर्व भगवान बुद्ध का अनुभव है। उन्होंने इस विधि को समस्त प्राणियों के कल्याण एवं मंगल के लिए समाज के सम्मुख रखा था जिसे सहज ही हर व्यक्ति अपना कर शुद्ध धर्म का जीवन जी सकता है। यह साधना-विधि व्यक्तिपूजा अथवा सांप्रदायिकता, अंध-भक्ति और अंधविश्वासों से दूर तथा एक युक्तिसंगत एवं वैज्ञानिक विधि है। 'विपश्यना' का शाब्दिक अर्थ है विभिन्न प्रकार से या विशेष रूप से देखना। अर्थात स्व-संवेदना का अनुभव करना ही विपश्यना है। यहां चर्म-चक्षुओं से देखने का अभिप्राय नहीं है। मन की आंखों से यथार्थ अनुभव करना है यानि जो वस्तु या स्थिति जैसी है, उसे वैसी ही देखना और अनुभव करना है। यह साधना चित्त की समता बनाये रखती है।

इस शिविर का आयोजन दिनांक २७.९.७५ से ७.१०.७५ तक आचार्य श्री सत्यनारायण गोयन्का के नेतृत्व में हुआ। श्री गोयन्का मूल रूप से राजस्थान के निवासी थे और अब ब्रह्मदेश के नागरिक हैं। उन्होंने यह साधना-पद्धति अपने गुरु श्रद्धेय ऊ बा खिन से प्राप्त की थी।

साधना शिविर के महत्त्व को देखते हुए इनके लिए बंदियों का चयन किया गया। इसमें विभिन्न अपराधों से संबंधित विभिन्न आयु के चुने हुए बंदी लिये गये जिनकी ग्रहण करने की क्षमता के बारे में जेल अधिकारियों को पूर्ण संतोष था। इस बात का पूर्ण ध्यान रखा गया कि बंदी इस साधना शिविर में स्वेच्छा से भाग लें और उन पर किसी प्रकार का दबाव न हो। शिविर के लिए चयन से पूर्व उनकी भूमिका एवं मनोदशा की जानकारी के लिए प्रश्नावली द्वारा प्रत्येक बंदी का अध्ययन किया गया। इस कार्य के लिए राजस्थान विश्वविद्यालय के समाज शास्त्र विभाग के अध्यक्ष डा. यूनिथान एवं समाजसेवी श्रीमती डा. स्वर्ण अहूजा का सहयोग भी प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त मुंबई विश्वविद्यालय के कॉलेज आफ़ सोशल वर्क की रिसर्च स्कालर कुमारी कुसुम शाह का भी सहयोग प्राप्त हुआ। इन बंदियों की वर्तमान मनोदशा तथा शिविर के पश्चात उसमें आवश्यक परिवर्तन के संबंध में अनुसंधान करने की सुविधा दी गयी।

शिविर में कुल ११४ बंदियों तथा ६ जेल विभाग के कर्मचारियों ने भाग लिया। बंदियों का विश्लेषण इस प्रकार है:-

(१) **शैक्षणिक योग्यता**

अ) पांचवी कक्षा तक ५१
ब) ६ से १० वीं तक ५३
स) १० वीं से ऊपर १०
योग ११४

(२) **आयु वर्ग**

अ) २१ वर्ष तक १४
ब) २२ से ४० वर्ष तक ७३
स) ४० से ऊपर २७
योग ११४

(३) **अपराध वर्ग**

अ) हत्या ७३
ब) डेकोयटी (डकैती) ८
स) अन्य ३३
योग ११४

उक्त संख्या में १० महिलाएं भी थीं।

शिविर की अवधि में बंदियों को अधिक-से-अधिक खुला वातावरण देने का प्रयास किया गया और इसके लिए उन्हें जेल बेरकों से बाहर निकालकर विशेष रूप से सुधारे हुए कक्षों में रखा गया जिनमें सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएं प्रदान की गयीं। यह भी ध्यान रखा गया कि साधना की अवधि में उन्हें इस प्रकार का सादा एवं सात्त्विक आहार दिया जाय जिससे उनके मन की स्थिति साधना के उपयुक्त बन सके। साधना शिविर में भाग लेने वाले बंदियों को निम्न प्रकार से आहार दिया गया:-

प्रातःकालीन नाश्ता; दलिया एवं दूध
दोपहर का भोजन; गेहूं की चपाती, दाल, सब्जी, चावल एवं सलाद
सायंकालीन नाश्ता; एक कप चाय, भीगे हुए चने एवं मोठ
रात्रि भोजन; एक गिलास दूध एवं फल।

कार्यक्रम

प्रातः ४.०० बजे जागरण
प्रातः ४.३० से ६.३० तक अपने स्थान पर साधना
प्रातः ६.३० से ८.०० तक अपने दैनिक कार्य एवं नाश्ता
प्रातः ८.०० से ९.०० तक सामूहिक साधना

प्रातः ९.०० से ११.०० तक अपने स्थान पर साधना
प्रातः ११.०० से अपराह्न १.०० तक भोजन एवं विश्राम
अपराह्न १.०० से २.३० तक अपने स्थान पर साधना
अपराह्न २.३० से ३.३० तक सामूहिक साधना
अपराह्न ३.३० से ५.०० तक अपने स्थान पर साधना
सायं ५.०० से ६.०० तक सायंकालीन चाय एवं विश्राम
सायं ६.०० से ९.०० तक सामूहिक साधना एवं प्रवचन
रात्रि ९.०० से १०.०० तक फलाहार एवं प्रश्नोत्तर
रात्रि १०.०० बजे शयन (पूर्ण विश्राम)

साधना शिविर का बंदियों के स्वास्थ्य एवं मानसिक स्थिति में परिवर्तन का अध्ययन करने की दृष्टि से सभी बंदियों का वजन एवं रक्तचाप भी लिया गया ताकि इनकी शिविर के बाद होने वाले परिवर्तनों से तुलना की जा सके ।

साधना शिविर की अवधि में शिविर का वातावरण अत्यंत प्रभावशाली रहा। बंदियों ने इसमें अत्यंत रुचि एवं लगन व श्रद्धा से भाग लिया और गंभीर प्रवचनों का भी अत्यंत गंभीरतापूर्वक मनन किया।प्रवचन के दौरान कुछ अतिथियों को भी प्रवचन सुनने की अनुमति प्रदान की गयी और आगंतुक सभी व्यक्ति उस अभूतपूर्व एवं पवित्र वातावरण का अनुभव करते थे जो कि साधना की अवधि में जेल में विद्यमान था।

शिविर दिनांक ७.१०.७५ को प्रातःकाल समाप्त हुआ। तत्पश्चात सभी बंदियों से संपर्क स्थापित करके उन पर साधना के प्रभाव का अध्ययन किया गया। बंदियों पर इस प्रभाव के मुख्य बिंदु निम्नलिखित हैं:-

- बंदियों के स्वास्थ्य में एक विशेष परिवर्तन देखा गया। जिन बंदियों के रक्तचाप अधिक होने की शिकायत थी, उनका रक्तचाप साधारण स्थिति में आ गया और सभी बंदी पूर्णरूप से स्वस्थ रहे।

❷ सभी बंदियों ने यह अनुभव किया कि उनके मानसिक तनाव में बहुत कमी थी और वे मन में पूर्व की अपेक्षा अधिक संतोष एवं शांति अनुभव कर रहे थे।

❸ बंदियों के व्यवहार में भी परिवर्तन स्पष्ट था। जेल अपराधों में एकदम कमी आ गयी और बंदियों का पारस्परिक झगड़ा तथा अन्य प्रकार के वैमनस्य लगभग समाप्त हो गये।

❹ धूम्रपान करनेवाले अधिकांश बंदियों ने धूम्रपान करना छोड़ दिया।

❺ जिन बंदियों के सिरदर्द, पेटदर्द, श्वास, कब्ज आदि साधारण बीमारियां थीं, उन्होंने बताया कि वे पूर्णरूप से स्वस्थ हैं।

❻ बंदियों में पारस्परिक मनोमालिन्य का अभाव देखा गया।

❼ साधना शिविर के बाद बंदियों की कार्यक्षमता में वृद्धि हुई। उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य एवं जेल उद्योग उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

कुछ बंदियों ने अपने अनुभव लिखकर भी दिये जिनमें मुख्य निम्न प्रकार से हैं: –

क) उनके मन की द्वेष-भावना, चिंता समाप्त हो गयी है। उनके मन की अशांति एवं मन में उठने वाली बुरी भावना कम हो गयी है और अब उन्हें दु:स्वप्न भी नहीं आते। वे अनुभव करते हैं कि यदि मन में इस प्रकार की शांति रही तो अपराध होना असंभव है।

ख) कुछ बंदियों ने बताया कि इस शिविर के पूर्व उन्हें अपने अपराधों के लिए निरंतर दु:ख एवं प्रतिशोध होता था, अब मन में शांति है। वे भविष्य में अपना जीवन शांति एवं शुद्धतापूर्वक व्यतीत करने के लिए कृतसंकल्प हैं। उनकी अरुचि, सुस्ती आदि का उन्हें आभास नहीं होता। उनका मन काम में अधिक लगता है।

ग) बंदियों ने यह मांग की कि इस प्रकार के साधना शिविर में भाग लेने का उन्हें बराबर अवसर मिले। जिन बंदियों ने साधना में भाग नहीं लिया, किंतु उन्हें केवल प्रवचन सुनने की अनुमति दी गयी थी, उन्होंने बताया कि प्रवचनों का उन पर प्रभाव पड़ा है और वे चाहते हैं कि ऐसे अवसर उन्हें भी प्रदान किये जायं।

अपराधी और विपश्यना

[श्री भगवान सिंह साईवाल, तत्कालीन निरीक्षक उप-कारागृह,
महानिरीक्षक कारागार कार्यालय, जयपुर]

प्राचीन भारत में राजा प्रसेनजित की प्रजा बड़ी ही भयभीत थी। राजा से नहीं, डाकू आतंक से। हां, उसके राज्य में एक बड़ा ही खूंखार, भयानक और निर्मम डाकू था। बात बहुत ही पुरानी है, आज से कोई पच्चीस सौ वर्ष पहले की। कहते हैं, वह डाकू आदमी की सूरत से घृणा करता था। दयाभाव का उसके पास क्या काम? आदमियों को देखते ही उन पर गिद्ध की तरह झपटता था और बात की बात में उन्हें मार-मार कर उनकी अंगुलियां काट कर अपनी माला में पिरो लिया करता था। अंगुलियों की माला पहन कर जंगल में स्वच्छंद रूप से घूमने वाला वह जालिम डाकू, उन दिनों अंगुलिमाल के नाम से पुकारा जाता था। राजा प्रसेनजित की सेना भी अंगुलिमाल से भयभीत थी और उसे काबू करने में असफल रही। इतिहास बताता है कि अंगुलिमाल ने ९९९ मनुष्यों की हत्या की और उसके गले की माला में ९९९ अंगुलियां पिरोई हुई थीं किंतु जब वह हजारवीं अंगुली अपनी माला में पिरोने के चक्कर में था, तभी सामने से आते हुए एक व्यक्ति पर वह झपटा परंतु इस पर उसका खड्ग नहीं उठ सका, उसके कदम डगमगाने लगे। वह व्यक्ति आगे बढ़ता था तो अंगुलिमाल के हर पीछे हटते हुए कदम के साथ-साथ उसका जंगलीपन दूर होता जा रहा था। हाथ से तलवार छूटी, तीर-धनुष फेंक दिये। अंगुलियों की माला को गले से निकाल फेंका। डाकू अंगुलिमाल उस शांत, सौम्य एवं करुणामय व्यक्तित्व के सामने स्थिर न रह सका। अंगुलिमाल झुक गया। उसके जंगलीपन में विवेक की तरंगें उठने लगीं। प्रकृति का नियम उसकी समझ में आने लगा, ऋत को पहचाना और शुद्ध धर्म को जीवन में धारण किया। अवश्य ही अंगुलिमाल के जंगलीपन को उस महामानव ने विपश्यना के धर्म-जल से धोकर उसे निर्मल बनाया होगा।

इतिहास की सच्चाई है कि वह महामानव भगवान बुद्ध थे जिन्होंने न केवल विपश्यना साधना से अपनी बोधि को जगाया वरन अंगुलिमाल जैसे राक्षस और आम्रपाली जैसी वेश्या सहित असंख्य गुमराह नर-नारियों को शुद्ध धर्म की दीक्षा

देकर 'विपश्यना साधना' के माध्यम से उन्हें 'स्व' का साक्षात्कार कर जीना सिखाया। न जाने विपश्यना साधना के अभ्यास से उन दिनों कितने ही अंगुलिमाल जैसे चोर-डाकू और हत्यारों ने अपने अंतर की आग बुझाकर शेष जीवन सुख-शांति से बिताया होगा। इस तथ्य को तो इतिहास के पन्ने ही उजागर करेंगे लेकिन मैं इस जमाने की बात आगे करता हूं–

शिविर सं. ११२ मेरा प्रथम शिविर था जो दिनांक २१.५.७५ से ३१.५.७५ तक समुद्र के किनारे रमणीय वातावरण में नारगोल (गुजरात) में लगा था। मैं राजस्थान सरकार की ओर से विपश्यना साधना शिविर में भाग लेने गया था। नारगोल के लिए प्रस्थान करने से पूर्व मन में उत्कंठा जागी कि इस साधना के बारे में कुछ तो पता चले और इसलिए मैंने उन महानुभाव से संपर्क किया जो इस साधना का अभ्यास करते आये थे। उन्होंने इस साधना की ऊपरी रूपरेखा से मुझे परिचित कराया और बताया कि विशेष तो शिविर में भाग लेने पर गुरुजी ही बतायेंगे। उन महानुभाव से वार्ता के दौरान जो प्रेरणा मुझे मिली उसका तत्काल प्रभाव तो यह पड़ा कि मैं अपने सभी पुराने लेपों को जयपुर रेल्वे स्टेशन के प्लेटफार्म पर ही उतार कर ट्रेन में बैठा और जब शिविर में पूज्य गुरुजी के प्रवचन कानों में पड़े तो जयपुर में उस महानुभाव के द्वारा मिली प्रेरणा क्षण-क्षण पुष्ट होने लगी, गुरुदेव के प्रति श्रद्धा बढ़ने लगी और 'विपश्यना साधना' में मन रमने लगा।

शिविर-समाप्ति के बाद एक नया जीवन लेकर जयपुर लौटा तो एकाएक अंगुलिमाल का ध्यान आया और उसी समय ख्याल आया कि वैसे अनेक अंगुलिमाल तो हमारे बाड़ों में बंद हैं। बड़े दुःखी हैं बेचारे, जल रहे हैं राग-द्वेष की ज्वाला में भीतर-ही-भीतर। कैसे इनका दुःख दूर हो? मैं केंद्रीय कारागृह, जयपुर के बंदियों की बात कर रहा हूं, जहां अधिकतर बंदी डकैती, लूट-मार, व हत्याओं के आरोप में आजन्म कारावास की सजा भुगत रहे हैं। राजस्थान सरकार के शासन-तंत्र में इन बंदियों के प्रति करुणा और प्रेम जागा और लगभग २,५०० वर्ष बाद फिर इस बार एक-साथ बहुत-से

अंगुलिमालों पर विपश्यना का धर्म-जल छिड़कने की कल्याणकारी योजना को त्वरित गति से क्रियात्मक रूप दिया गया।

हमारे अंगुलिमाल अपने शरीर और चित्त-शोधन के लिए तैयार हुए। राजस्थान विश्व-विद्यालय के समाज-शास्त्र विषय के आचार्यों द्वारा शिविर में बैठने से पूर्व तथा पश्चात प्रत्येक साधक बंदी का साक्षात्कार करवाया - शोधकार्य के लिए। तथा चिकित्सा अधिकारी द्वारा भी सभी साधक बंदियों के स्वास्थ्य की परीक्षा करायी गयी। शोधकार्य के लिए ही मुंबई से कुमारी कुसुम शाह भी आयीं जो कारागृह के अंदर ही दस दिनों तक अंगुलिमालों के बीच रहीं। कारागृह के उस भाग में, जिसे शिविर लगाने के लिए चुना गया था, कुछ दिनों पहले से वहां पावन तरंगें तैरने लगीं। जब शिविर आरंभ हुआ तब शाम के समय प्रवचन में बाहर से आने वाले सज्जन शिविर-स्थल को देखकर आश्चर्य करते थे और उन्हें संदेह होता था कि क्या वे सचमुच कारागृह में आये हैं। एक महान संत के आगमन के लिए जैसा वातावरण बनता है, ठीक वैसा ही वातावरण उपस्थित था जब दिनांक २७.९.७५ से केंद्रीय कारागृह, जयपुर में दस दिन का ऐतिहासिक शिविर लगा। 'विपश्यना साधना' का यह ११७वां शिविर था जो पूज्य गुरुदेव श्री गोयन्काजी के द्वारा संचालित किया गया था। इसमें १०४ पुरुष बंदी व १० महिला बंदियों ने भाग लिया था। मैं लगातार इस शिविर के संपर्क में रहा। इस शिविर की तैयारी को जहां मैंने समीप से देखा था, वहां शिविर समाप्ति के बाद भी कारागृह के वातावरण और साधक बंदियों की गतिविधियों को मैं देखता आया हूं। दिनांक ७.१०.७५ को शिविर समाप्त हुआ। साधकों के जो मुर्झाए हुए चेहरे मैंने दिनांक २७.९.७५ से पहले देखे थे, वे अब गोल व प्रफुल्लित दिखाई दे रहे थे। इन दस दिनों की विपश्यना ने उनके अंदर एक अंगुलिमाल को मार कर उन्हें नया जन्म दिया था। सभी कृतज्ञ और आभारी थे, विपश्यना साधना की विधि ग्रहण करके ,जिसके द्वारा उन्हें बंधन में सुख-शांति भोगने की कला हाथ लगी। किंतु पूज्य गुरुदेव के प्रति आभार और कृतज्ञता प्रकट करने के लिए उन्हें विपश्यना साधना नियमित रूप से

प्रातः एवं सायं एक घंटा अभ्यास करना ही होगा। अभ्यास से ही शुद्ध धर्म का दीप मानस में प्रज्वलित होगा।

उपरोक्त शिविर के तुरंत बाद दिनांक ७.१०.७५ से ११८वां शिविर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर के कस्तूरबा छात्रावास के प्रांगण में लगा, जिसमें फिर मैंने भाग लिया और नारगोल शिविर के बाद से मेरी साधना के अभ्यास को बल मिला। इस शिविर में बंदी साधक सायंकाल गुरुजी के प्रवचन सुनने के लिए रोज चार किलोमीटर दूर केंद्रीय कारागृह से आया करते थे। प्रवचन में समाज के और अनेक प्रतिष्ठित व्यक्ति आते थे जो इन साधकों के सद्-व्यवहार से बड़े प्रभावित थे।

शिविर सं. ११८ की समाप्ति के साथ मैंने क्या पाया, क्या जाना है, लेखनी के द्वारा कैसे बताऊं? बस अभी तो ऐसा लगता है जैसे पहले से ही एक दुनिया अंदर बसी है जिसे जानने के लिए पवित्रता की सीढ़ी लगाकर धीरे-धीरे मैं उतर रहा हूं। बहुत गहरी दुनिया है जिसमें साधनाभ्यास की निरंतरता ही गहराइयों में ले जायगी। मन बदला है, हल्कापन भी आया है, रोग भी जाता नजर आया है, संतुष्टि के भाव बनने लगे हैं और सबसे बड़ी बात तो यह बनी है कि मन की प्रसन्नता अपना क्षेत्र बहुत व्यापक बनाने में लगी है और भीतर की नजर पैनी होने लगी है। समता का जीवन जीने की आदत पड़ गई है किंतु इसका यह मतलब नहीं है कि मेरे जीवन में तनाव, खिंचाव, चिंताएं शारीरिक दुःख तथा मन में विकार पैदा ही नहीं होते हैं। यह सब कुछ होता तो है लेकिन विपश्यना साधना के अभ्यास से ये टिक नहीं पाते। मन समस्याओं से पलायन में सहयोग नहीं देता है वरन उनका कारण तलाश करके समाधान कर शुद्ध चित्तवृत्तियों का सृजन करता है।

उधर बंदी साधकों के उद्गार और अनुभव 'विपश्यना साधना' के संबंध में जो सामने आये हैं, यह सचमुच कीर्तिमान हैं, सब पर समान प्रभाव पड़ा है साधना का। मेरा विश्वास है ये बंदी साधक जब भी मुक्त होंगे, ऊंची-ऊंची दीवारों के बाहर आयेंगे तो अंगुलिमाल की भांति ये भी अपना शेष जीवन विपश्यना को जीवन की शैली बनाकर सत्य, प्रेम और करुणा

की त्रिवेणी बहाते हुए समाज-सफाई के कार्य में उल्लेखनीय सफलता प्राप्त कर सकेंगे। बंदी साधकों की तथा अन्य बंदियों की मांगें हैं कि विपश्यना साधना के शिविर कारागृहों में वर्ष में एक-दो बार लगते ही रहने चाहिएं ताकि अधिक-से-अधिक बंदी लाभान्वित हो सकें।

राजा प्रसेनजित की सेना अंगुलिमाल को चाहे काबू न कर पायी हो पर हमारे आज के अंगुलिमालों को सही दिशा दिखाने के लिए राजस्थान के आरक्षी विभाग के अनेक अधिकारी और थानेश्वरी (इन्चार्ज पुलिस स्टेशन, पूज्य गुरुजी के शब्दों में) को भी राजस्थान पुलिस अकादमी, जयपुर में दिनांक २७.१.७६ से ६.२.७६ तक एक शिविर लगाकर विपश्यना साधना का अभ्यास कराया गया था जिसके परिणाम भी उत्साहवर्धक निकले हैं। मेरा विश्वास है, इसी प्रकार भविष्य में सरकारी एवं गैर-सरकारी स्तर पर विपश्यना साधना के शिविर राजस्थान में समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्थानों पर तथा विभागों में लगते रहे तो राजस्थान में कारागृहों के बाहर भी अपराध और अपराधी की समस्या को हल करने में उल्लेखनीय सफलता मिल सकेगी और प्रदेश का हर अंगुलिमाल सभ्य नागरिक बन विशुद्ध धर्म का जीवन बिताने लगेगा।

❦❦❦

जेलें, अपराधी और विपश्यना

[श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार]

समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों तथा अपराधविज्ञानियों की चिरकाल से यह इच्छा रही है कि जेलें मात्र दंडगृह न रह कर सुधार-गृह बन जायं। इस दिशा में तरह-तरह के मनोवैज्ञानिक प्रयोग किये जाते रहे हैं। किंतु ये प्रायः उतने सफल नहीं रहे जितना उनसे आशा की जाती थी। पाश्चात्य जगत की जेलों में कैदियों की अपराधोन्मुख मनोवृत्ति को सुधारने के लिए योगासनों और प्राणायाम का अभ्यास १०-१५ वर्ष से उल्लेखनीय परिणाम दिखा रहा है।

परंतु गत वर्ष सितंबर-अक्टूबर में जयपुर की सेंट्रल जेल में, राजस्थान सरकार के तत्त्वावधान में, ११४ अपराधियों पर जो 'विपश्यना' नामक

ध्यानयोग का परीक्षण किया गया उससे अपराधियों के सुधार की विधियों के इतिहास में नये अध्याय का सफल सूत्रपात हुआ है।

विश्व में यह पहला प्रयोग था जिसमें कैदियों के सुधार के उद्देश्य से 'ध्यानयोग' आजमाया गया - और वह भी सरकारी तौर पर। यहां इस ऐतिहासिक परीक्षण की कहानी तथा कैदियों के मन और शरीर पर पड़ने वाले 'विपश्यना-ध्यान' के प्रभावों की वैज्ञानिक रिपोर्ट भी प्रस्तुत है।

स्थान : सेंट्रल जेल, जयपुर

समय : सितंबर १९७५

पात्र : (१) राजस्थान के गृह-सचिव श्री रामसिंह
(२) जेल सुपरिंटेंडेंट

विषय : ध्यानयोग 'विपश्यना' के शिविर के दस दिनों में;
(१) साधक कैदियों के लिए धुले हुए साफ कपड़े,
(२) सात्त्विक शुद्ध आहार,
(३) उन्हें खुले बैरक में रखना जिस पर न ताला हो, न पहरेदारी हो,
(४) दैनिक मेहनत से, काम से, साधना के लिए छुट्टी, और
(५) दस महिला-कैदी भी इस शिविर में भाग लें।

जेल सुपरिंटेंडेंट को इन सभी बातों पर तरह-तरह की आशंकाएं थीं। नंबर १ से ४ तक सुविधाएं देने के बारे में उनका कहना था कि जेल में जो अन्य लगभग हजार कैदी हैं उनके मन में इन सुविधाओं से ईर्ष्या जागेगी और परिणामस्वरूप जेल में हंगामा खड़ा हो जायगा। आगे, जेल के नियमों के अनुसार महिला कैदियों को पुरुष कैदियों से सदा अलग रखा जाता है ताकि लंबी अवधि की सजा वाले पुरुष कैदियों के मन में महिला कैदियों को देखकर यौन-वासना जागृत होने के दुष्परिणामों से बचा जा सके। इसलिए सुपरिंटेंडेंट को शिविर में महिला कैदियों को शामिल करने में झिझक थी।

दोनों में काफी वार्तालाप के बाद यह तय हुआ कि इस योगसाधना की शर्तों के अनुसार एक शिविर लगाकर प्रयोग तो कर ही लेना चाहिए।

और प्रयोग आरंभ हुआ –

श्री रामसिंहजी ने प्रयोग को जरा विस्तृत रूप देने के लिए यह इच्छा प्रकट की कि जेल के शेष १,००० कैदी भी गुरुजी के - (श्री सत्यनारायण जी गोयन्का के) - सायंकालीन प्रवचनों में हाजिर हों। इस पर भी जेल सुपरिंटेंडेंट ने आशंका प्रकट की कि प्रवचन-हाल में इन १,००० कैदियों को बिना पहरे के बैठने की अनुमति देना खतरनाक हो सकता है – विशेषकर ऐसी हालत में जब कि प्रवचन सुनने के लिए अनेक सरकारी उच्चाधिकारी और उनके परिवार के लोग भी उपस्थित होंगे। फिर, जेल के नियमों के अनुसार कोई भी उच्चाधिकारी जब जेल में निरीक्षण के लिए आये, उसकी रक्षा के लिए, उसके साथ सशस्त्र पहरेदारों की निगरानी आवश्यक है। परंतु शिविर के नियम इसके विपरीत थे। शिविर में कोई सशस्त्र पहरेदार प्रवेश नहीं कर सकता था। तिस पर, इन एक हजार कैदी श्रोताओं में लगभग १०० महिला कैदियों के शामिल होने से सुपरिंटेंडेंट साहब को अतिरिक्त आशंका मालूम हो रही थी।

गृह-सचिव की उत्सुकता का रहस्य –

परंतु गृह-सचिव श्री रामसिंहजी ने इन आशंकाओं के बावजूद एक योगसाधना-शिविर का प्रयोग करके देखना ही चाहा। श्री रामसिंहजी इस प्रयोग के लिए इतने उत्सुक इसलिए थे कि उन्होंने स्वयं इस प्रकार के एक शिविर में कुछ माह पूर्व भाग लिया था और उसके लाभों से वे बहुत प्रभावित और आश्वस्त थे। उन्हें भरोसा था कि शिविर के दौरान जेल में कोई उपद्रव नहीं होगा। उनकी यह संभावना सत्य सिद्ध हुई।

शिविर समाप्त होने पर जेल सुपरिंटेंडेंट ने बताया कि जिस जेल में कैदी रोजाना १५-२० उपद्रव करते रहते थे, वहां इस शिविर के दौरान न केवल १,००० कैदियों की भीड़ में, बल्कि अन्य दैनिक कार्यक्रमों के दौरान भी, कोई उपद्रव नहीं हुआ।

इस शिविर के तत्कालपश्चात गोयन्काजीका अगला शिविर 'राजस्थान विश्वविद्यालय' में चला। इस दूसरे शिविर के दस दिन के दौरान भी 'सेंट्रल जेल' में कोई उपद्रव नहीं हुआ, ऐसा फॉलो-अप से देखने में आया।

आखिर रहस्य क्या है? –

प्रश्न यह खड़ा होता है कि 'विपश्यना' ध्यानयोग के दिनों में जेल में जो ऐसा प्रशांत वातावरण पैदा हुआ उसका रहस्य क्या है? गैर-विद्यार्थी १,००० कैदियों ने शिविरार्थियों में हुए परिवर्तन देखे, वे उनसे प्रभावित हुए बिना न रह सके।आखिर विपश्यना में ऐसा क्या जादू है? और यह 'विपश्यना' साधना है क्या?

विपश्यना साधना –

१. इस सांप्रदायिकताविहीन और पूर्णतः वैज्ञानिक साधना में साधक अपने चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास करते हुए अपने सहज स्वाभाविक श्वासोच्छ्वास के प्रति जागरूक रहता है।

२. श्वास का न केवल हमारे शरीर से, बल्कि मन और मन के विकारों से भी गहरा संबंध है। श्वास, शरीर की एक प्रक्रिया होने के नाते शरीर से तो संबंधित है ही, परंतु जब-जब हमारे मन में क्रोध, भय, वासना आदि विकार जागते हैं, तब-तब सांस की गति बदल जाती है। यह आम अनुभव है।

३. श्वास के आवागमन के प्रति सजग रहने का अभ्यास करता हुआ साधक अपने शरीर में सूक्ष्म स्तर पर होने वाली नाना जीवन-प्रक्रियाओं – ('मेटाबोलिक,' अर्थात उपापचयन-संबंधी, विद्युत-चुंबकीय एवं जीव-रासायनिक प्रक्रियाओं) –के घटने को अनुभव करने लगता है। ये प्रक्रियाएं भी मात्र शारीरिक नहीं हैं, बल्कि इनका भी मन के साथ गहरा संबंध है। जब-जब हमारे मन में कोई विकार जागता है, तब-तब ये प्रक्रियाएं विशेषरूप में चालू होने लगती हैं जिससे हमें तरह-तरह की अनुभूतियां (गर्मी-सर्दी, सिहरन, पुलकन, आकुंचन-विकसन,आदि) होने लगती हैं।

४. सामान्यतया न हम अपने इन विकारोंके प्रति सजग रहते हैं और न ही इनसे उत्पन्न विभिन्न संवेदनाओं के कारण मन में होने वाली पसंदगी-नापसंदगी – (अर्थात, राग-द्वेष) – की प्रतिक्रियाओं के प्रति। विपश्यना-साधना इन सब के प्रति हमें सजग रह सकने की क्षमता प्रदान करती है।

५. क्योंकि हम अपने भीतर चलने वाली क्रियाओं-प्रतिक्रियाओंके प्रति जागरूक नहीं हैं, इसलिए जब कभी कोई प्रिय या अप्रिय घटना घटती है, तब इन विकारोंके भावावेश से हम अभिभूत हो जाते हैं। क्रोध आये तो हमें पता ही नहीं लगता कि कब वह आया और हमारे सिर पर सवार हो गया जिसके परिणामस्वरूप हम अकथनीय कह देते हैं और अकरणीय कर लेते हैं।

६. विपश्यना का अभ्यास विकारोंके उठते ही हमें उनके प्रति जागरूक होना सिखाता है जिससे वे हम पर हावी न हो जायें।

७. न केवल विकारोंके अंधभावावेश के समय हम अनुचित प्रतिक्रिया कर बैठते हैं, बल्कि उसके बाद भी लंबे अर्से तक उनका प्रभाव हमारे मन पर बना रहता है। किसी अप्रिय बात को याद कर-कर के हमारा मन जितनी देर सुलगता रहता है, उतनी देर बेचैन और अशांत ही रहता है।

विकारों का नाश –

८. विपश्यना द्वारा अपने शरीर और मन के विकारोंको साक्षीभाव से देखने का अभ्यास हमें इन विकारों से अभिभूत होने से बचाता है।

९. हमारे अंतर्मन में जो विकार-ग्रंथियां संग्रहीत हुई रहती हैं उन्हें यह साधना-विधि उभार कर चेतन मन पर लाती है और उनका निराकरण कर देती है। इस प्रकार इस साधना द्वारा विकारों का दमन नहीं, बल्कि शमन होता है। नये विकारों का संवर ही नहीं होता, बल्कि पुरानों की निर्जरा भी होती है। विकारों की शक्ति क्षीण होती जाती है और मन निर्मल होता जाता है।

१०. मन जब निर्मल होता है, तब स्वभाव से उसमें मैत्री, करुणा, मुदिता और समता के सद्गुण विकसित होने लगते हैं। इससे जीवन-व्यवहार सुधरता है। पारस्परिक संबंध ठीक होते हैं। मन का संतुलन बना रहता है। इसी कारण लोगों के स्वभाव में स्पष्ट परिवर्तन दिखायी देते हैं।

११. हर अपराध के पीछे किसी-न-किसी मानसिक विकार का आवेश रहता है। जिस विद्या द्वारा हम इस आवेश से मुक्त हो सकते हैं, वह हमें अपराधों से मुक्त रखेगी ही।

विज्ञान क्या कहता है? –

जयपुर सेंट्रल जेल में २७.९.७५ से ७.१०.७५ तक आयोजित विपश्यना शिविर का वैज्ञानिक अध्ययन तीन संस्थाओं द्वारा किया गया।

राजस्थान सरकार द्वारा गठित 'प्रबंधक समिति' द्वारा (जिसके सचिव श्री गणेशनारायण व्यास थे), राजस्थान विश्वविद्यालय के समाजशास्त्र-विभाग के अध्यक्ष डॉ. टी. के. एन. उन्नीथान और उनके साथियों द्वारा तथा मुंबई विश्वविद्यालय से संबद्ध 'कालेज आफ सोशल वर्क' की एक प्राध्यापिका सुश्री कुसुम शाह द्वारा इन कैदियों पर विपश्यना के प्रभावों के अलग-अलग पहलुओं का अध्ययन किया गया। नीचे इनके प्रतिवेदनों का संग्रह संक्षेप में दिया जा रहा है:-

- धूम्रपान करने वाले बहुत से बंदियों ने धूम्रपान छोड़ दिया।
- जिन बंदियों को सिरदर्द, पेटदर्द, कब्ज आदि साधारण बीमारियां थीं, उनमें से बहुतों ने बताया कि वे बहुत कुछ या पूर्णरूपेण स्वस्थ हैं।
- बंदियों के पारस्परिक मनोमालिन्य में कमी देखी गयी। उनके मन में पारस्परिक प्रेमभाव की वृद्धि हुई।
- साधना-शिविर के बाद बंदियों की कार्यक्षमता में वृद्धि हुई।
- उनके द्वारा किये जाने वाले कार्य एवं जेल-उद्योग उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

- बहुत से बंदियों ने यह प्रकट किया कि वे भविष्य में अपना जीवन शांति एवं शुद्धता से व्यतीत करेंगे।
- जिन बंदियों ने केवल प्रवचन सुने थे उन्होंने यह बताया कि प्रवचनों का उन पर प्रभाव पड़ा है और वे चाहते हैं कि साधना में शामिल होने का मौका उन्हें भी दिया जाय।
- शिविर में भाग लेने वाले बहुत से कैदियों ने यह इच्छा प्रकट की कि ऐसे शिविर जेलों में बार-बार लगाये जायं –कइयों ने कहा कि साल में कम-से-कम तीन बार।
- और उन्होंने यह विचार भी प्रकट किया कि सभी कैदियों को इन शिविरों में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए।

एक रोमांचक उदाहरण इस विषय को प्रभावशाली ढंग से स्पष्ट कर देगा –

फांसी का सजायाफ्ता 'गुरजंटसिंह'

'सेंट्रल जेल' में तीन ऐसे फांसी का दंड-प्राप्त कैदी थे जो एकांत कोठरी में कैद रहकर फांसी की तिथि का इंतजार कर रहे थे। इनमें एक था सरदार गुरजंटसिंह जिसने लाउडस्पीकर द्वारा अपनी तनहाई की कोठरी में ही सायंकालीन प्रवचन सुने थे। उसने शिविर समापन के दिन शिविर-संचालक 'महात्मा' के दर्शन करने और उनसे धर्मलाभ प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की।

जेलों के इतिहास में यह पहला मौका था कि फांसी के किसी प्रत्याशी को ध्यान की धर्मदीक्षा दी गयी और उसी कोठरी में दस दिन अभ्यास करने के बाद उसे अन्य साधक कैदियों के साथ 'सामूहिक प्रवचन' और साधना में शामिल किया गया। दस दिनों के भीतर ही गुरजंटसिंह के मन की व्याकुलता जिस कदर दूर हुई, उसे देखकर सभी साधक गद्गद हो गये। शिविर में अधिकांश कैदी भी तो खून और डकैती के ही अपराधी थे। उन पर भी तो विपश्यना का गहरा प्रभाव हुआ ही, परंतु गुरजंटसिंह की बात अनूठी ही थी जिसने कि अपने जीवन में अनेक खून किये थे।

राजस्थान सरकार ने इस शिविर के लाभों तथा अधिकृत रिपोर्टों पर सावधानी से विचार किया है। उसने कैदियों में हुए अभूतपूर्व सुधारों को देखकर 'विपश्यना साधना' को अपराधियों के सुधार के माध्यम के रूप में अधिकृत तौर पर स्वीकार कर लिया है। विश्व में यह पहला प्रयोग था जिसमें कैदियों के सुधार के लिए (सरकारी तौर पर) ध्यानयोग काम में लाया गया।

पट ३

शिविरार्थियों के अनुभव

१ "दिनांक २७.९.७५ से ७.१०.७५ तक एक शिविर यहां कारागृह में लगाया गया। इस शिविर में मुझे भी भाग लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शुरू में आचार्य जी ने पांच शील दिलाये। फिर आनापान की साधना शुरू हुई। तीन रोज तक आनापान की क्रिया कराते रहे। बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा इस सांस लेने की क्रिया से क्या होगा? और कैसे जीवन जीने का मार्ग मिलेगा? यह तो वे ही पुरानी बातें हैं जो सब जानते हैं। चौथे दिन विपश्यना की विधि सिखायी गयी। यह एक निराला ही तरीका था। अपने आपको देखो, अपने मन का मैल धोओ। और अपने ही शरीर में क्या हो रहा है, इसको जानते रहो। इसको जानते-जानते इस निर्णय पर पहुँचा कि यह तरीका बहुत आसान है। लेकिन फिर मेरा मन भटक जाता तो आचार्यजी के बताये अनुसार अपने सांस को देखने लग जाता। ऐसा अभ्यास करते-करते धीरे-धीरे सब इंद्रियों और मन पर काबू आने लगा।..... अब इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूं कि अगर मनुष्य लगातार यह साधना करता रहे तो दावे के साथ मुक्ति प्राप्त कर सकता है। अपने मन के मैल धो सकता है, अपने आपको निर्मल बना सकता है और सच्चा जीवन जी सकता है।

"मेरे जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ। इन दस दिनों में मैं मन पर राज करने लगा और प्यार इतना आने लगा कि पूछो मत! मन से बदले की भावना दूर हुई और प्यार की भावना तीव्रतर होती गयी। जिस व्यक्ति से मेरा झगड़ा हुआ था, उसी पर प्यार आने लगा। यह इस शिविर की ही देन है।

"मैंने जो पंचशील धारण किये हैं उनका जीवनभर पालन करता रहूंगा। मेरी इच्छा है कि ऐसे ही और शिविर लगने चाहिएं जिससे और लोगों को भी फायदा मिले। (अपराधियों के लिए) और शिविर लगेंगे तो अपराधी अपराध करना छोड़ देंगे और सारा विश्व सुखी हो जायगा।

"सबका भला हो। सारा संसार सुखी हो।"

– श्रवण सिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

२ ".....सुबह से ही मन लगने लगा और नासिका में बड़ी ही मोहक खुशबू आने लगी। मैंने समझा कि किसीने सेंट लगा रखा है। खुशबू काफी समय तक आती रही, मैं अभ्यास करता रहा। शाम को जब बैठा तो आंखों में रोशनी का अनुभव हुआ, और कानोंमें धूं-धूं की आवाज आने लगी।

"सुबह ये अनुभूतियां गुरुजी को बतायीं। उन्होंने कहा कि यह अक्सर होता ही है जब मन एकाग्र होना शुरू होता है। इसमें आसक्त मत हो जाना। यह तो जिस रास्ते पर चल रहे हो, उस रास्ते पर मील के पत्थर हैं, मार्ग की धर्मशालाएं हैं। तो मुझे बहुत ही खुशी हुई कि ठीक रास्ते पर चल पड़ा हूं और अभ्यास की निरंतरता जारी रखी। धीरे-धीरे मन लगने लगा।

"सिर से पांव तक सारे शरीर में संवेदनाओं को देखता रहा, फिर कभी घंटियों की सी आवाज आने लगी। मन शांत होने लगा और आनंद आने लगा। संवेदना वगैरह रोजाना होने लगी।....गुस्सा भी धीरे-धीरे कुछ कम पड़ने लगा। जीवन की चाल में कुछ फर्क पड़ने लगा। मैं हर आदेश को बड़ी कठोरता से पालन करने लगा। कोई खाना-पीना, उठना-बैठना नियम के विरुद्ध नहीं कर रहा था। स्वभाव में भी अंतर आना शुरू हो गया। फिर मन में यह आने लगा कि जब कभी छूट कर मैं घर जाऊंगा तो मेरे माता-पिता को यह साधना जरूर दिलाऊंगा। मैंने आखिर निश्चय कर लिया कि मैं मेरे सारे परिवार को और दोस्तों को यह साधना जरूर-जरूर करवाऊंगा।

"मैं सच्चे हृदय से श्रीमान होम-सेक्रेटरी साहब का बहुत ही आभारी हूं क्योंकि इस नरक भूमि में भगवान मिलाया, सही मार्गदर्शक मिलाया। इनका मैं किन शब्दों में शुक्रिया अदा करूं? जब भी मैं गुरुजी की दिव्य मुस्कान देखता था, मन बड़ा प्रफुल्लित होता था। साक्षात ज्ञान के भंडार गुरुजी ने कृतार्थ होने का मार्ग दर्शाया। मैं उनका जीवनपर्यंत आभारी रहूंगा।"

– प्रतापसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

३ इस साधना से दस दिनों में मुझे सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मेरे मन में पहले से काफी शांति रहने लग गयी।.....गुरुजी की वाणी बहुत ही प्रभावशाली थी व समझाने का तरीका भी अनूठा था। एक उदाहरण में

बताया कि आदमी किस तरह सुखी रह कर दूसरों को भी सुख व शांति दे सकता है। जो खुद दुःखी है, जिसके पास दुःख के सिवाय कुछ है ही नहीं, वह किसी के जीवन में सुख कैसे बिखेर सकता है। सो मैं गुरुजी के भाषणों से जीना कैसे चाहिए, इस बात से बहुत प्रभावित हुआ हूं।.....कोई आदमी यह नहीं देख सकता कि उसके अंदर बुराइयां हैं। सो हर आदमी को अपनी बुराई अपने आप में दिखेगी तो वह उसको किसी हालत में भी नहीं रखेगा। मैं खुद भी 'जिओ और जीने दो' की नीति पर चलने वाला था। पर आदमी यह नहीं जानता कि किन बुरे संस्कारों के कारण किन विपदाओं में पड़ जाता है! सो मैं गुरुजी के विचारों से बहुत ज्यादा प्रभावित हुआ हूं। लेकिन इन सब बातों को यदि हम केवल पढ़ने के बजाय एक-एक करके जीवन में उतारें तो हमारा जीवन बहुत ही सुखी हो सकता है। वैसे मैं किसी जाति के धर्म में पहले से ही विश्वास नहीं करता था। गुरु नानक जी की वाणी जरूर पढ़ता था लेकिन पहले से ही ऐसा विचार था कि पढ़ने के बजाय जो पढ़ा जाय उस पर अमल किया जाय, क्योंकि सभी धर्म करीब-करीबएक हैं। केवल समझने में फर्क है। सभी धर्मों में पंचशील का पालन करना है। सभी में झूठ न बोलना, शराब न पीना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना सिखाया गया है। लेकिन सोसाइटी गलत होने से आदमी भटक जाता है। सो विपश्यना से आदमी अगर अपनी भलाई-बुराई देख सके तो इससे बढ़कर कल्याणकारी रास्ता इस दुनिया में नहीं हो सकता।

– हरफूल सिंह

[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

४ "इस विपश्यना के करने से संपूर्ण शरीर में कभी खुजली, कभी सुरसुराहट, कभी भारीपन, कभी हल्कापन, कभी शीतलता, कभी तरंग आदि के रूप में अंदर के पाप उखड़ कर बाहर आये और मन के अंदर जमे हुए राग-द्वेष, काम-क्रोधआदि शत्रु भी। अंतर्मुखी होकर झांकने से उनकी जड़ उखाड़ने का रास्ता भी मालूम हुआ। चित्त की चेतन शक्ति बढ़ी और यह चेतन शक्ति गीता में बतायी हुई समाधि में जागृत अवस्था ही है। यह अवस्था साधारण जागृत अवस्था नहीं, सुषुप्त अवस्था भी नहीं, स्वप्न

अवस्था तो हो ही कैसे सकती है? क्योंकि स्वप्न अवस्था तो कल्पित होती है और यह प्रत्यक्ष है। यह तो समाधि में जागृत अवस्था है। इस अवस्था में जिस समय ज्ञान प्राप्त हुआ, उस समय गीता जी के श्लोक की स्मृति हुई -

'या निशा सर्वभूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी।
यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः॥'

"इस अवस्था का तो अच्छी तरह अनुभव हुआ है। और भी बहुत सी बातें शरीर के अंदर हैं, उनका भी ज्ञान हुआ। इनमें कोई भी कल्पित अनुभव नहीं और भूत अथवा भविष्य शामिल नहीं। यही सत्य है। इस विपश्यना करने से बहुत से लाभ हुए। शांति आती है, मन की समता बढ़ती है। शरीर में सभी जगह मन की चेतना बढ़ती है। वास्तव में मन में समता आदि सभी गुण प्रकट होते हैं। सच्चा सुख वास्तव में इसी में है।

"जो-जो भी शब्द गुरुमुख से निकलते थे वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे। उनका हमारे मन पर बहुत ही प्रभाव पड़ा तथा हमारा मन अथवा हृदय बहुत ही निर्मल हुआ। बहुत प्रेमभरी तरंगें उठती हैं। हमको बहुत ही सुख का रास्ता मिल गया। हम सोचते हैं - भविष्य में हमसे कोई भी बड़ी गल्ती नहीं होगी।"

– झुनझुनराम
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

५ राजस्थान सरकार द्वारा जेल सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत जो दस दिवस का विपश्यना शिविर केंद्रीय कारागृह, जयपुर में हम बंदियों के लिए लगाया गया वह हमारे लिए एक सुनहरा अवसर था। यह भारतीय संस्कृति को पुनर्जीवित करने में सहायक हो सकता है।

मैंने पाया –

- विपश्यना मानसिक विकारों को हमेशा-हमेशा के लिए जड़ से खत्म करने की अचूक औषधि है। यह प्रतिक्षण मानव को स्वयं के प्रति जागरूक रहने के लिए अग्रसर करती रहती है।

- विपश्यना अंत:करण की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों को जान लेने का 'एक्सरे' है। यह मन पर अपना अधिकार जमा कर हर बात का सही निष्कर्ष निकालते हुए अपने दु:खों, मानसिक पीड़ाओं, राग-द्वेष, दुराचार आदि को दूर करने का एक अनूठा उपाय है।
- विपश्यना को प्रत्येक संप्रदाय का व्यक्ति सहर्ष कर सकता है।
- आचार्य श्री गोयन्काजी की शिक्षा में शुद्ध धर्म का निवास है। इसमें कोई चमत्कार, दार्शनिक, मनगढंत बात नहीं है।
- विपश्यना एक सरल, सुबोध, परम सत्य वाली पद्धति है जो दस दिवस के प्रयत्नों से जानी जा सकती है।
- विपश्यना करने के पश्चात मैं अपने आप में एक नयी रोशनी देखने लगा हूं जो मेरे अपने तथा संसार के हर प्राणी के लिए हितकर हो सकती है।

– मांगीलाल

[अपराध - हत्या; सजा - २० वर्ष]

६ "मुझे पंचशील बहुत ही अच्छे लगे। हर साधक को इनका पालन करना चाहिए। इंसान को जीवनमुक्ति प्राप्त करने के लिए यह साधना करवायी जाती है –अर्थात, इंसान दु:खों से छुटकारा प्राप्त कर सके जिससे उसके हर दु:ख की जगह शांति प्राप्त हो सके। गुरुजी ने हमें बताया कि इंसान कैसा भी हो, जब तक उसमें बोधिज्ञान या धर्म नहीं है, तब तक वह जीवन के दु:खों से छुटकारा नहीं पा सकता और उसका जीवन दु:ख से भरा रहता है।

"मुझे इतनी शांति प्राप्त हुई है कि मैं हर शिविर में शामिल होना चाहता हूं जिससे कि खुद सफल होकर जनसेवा कर सकूं। गुरुजी ने जनसेवा के लिए और अपनी मुक्ति के लिए जो रास्ता दिखाया वह बड़ा प्यारा है। हर मनुष्य से, प्राणी से प्यार करना, अपने अंदर राग-द्वेष को न आने देना, अपने मन को अपने शरीर में ही रखना, कहीं बाहरी झंझटों में न उलझे – यह उन्होंने हमें सिखाया। यह मुझे बहुत ही अच्छा लगा और अपने मन को

शांति प्राप्त हुई। दूसरों की सेवा करना, याने जनसेवा करना, भी मुक्ति का साधन है। अपना जीवन जनसेवा में लगायें और खुद भी मुक्त हो जायं, यह भावना हममें जागृत की और लोगों के लिए प्यार की भावना हममें भर दी। और बताया कि हर इंसान से प्यार करें।....मुझे तो इतनी लगन हो गई कि हमेशा ही इस जीवन को ही मुक्त रखूंगा और मानव-सेवा करूंगा। हमारे मन में उमंग और जनता के प्यार की तरंगें उठने लगी हैं।"

– कर्णसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

७ "हम मंगल-कामना करते हैं कि सभी देशों में मानव विकास अंत:करण को जानने के सबल प्रयास विपश्यना द्वारा कार्यान्वित होते रहें ताकि प्रत्येक राष्ट्र के भावी नागरिक आदर्श मानव का चरित्र पेश कर सकें और कोई भी इंसान जहालत की जिंदगी व्यतीत न करे। प्रत्येक नागरिक अराजकतावाद, अशुद्धता, प्रतिक्रियावाद, प्रतिस्पर्धा की भावना, हत्याएं, जुल्म, शोषण, लूट, भ्रष्टाचार, अन्याय, धोखाधड़ी, बलात्कार, जमाखोरी, मुनाफाखोरी, रिश्वतखोरी सभी बुरे कर्मोंसे छुटकारा पा सके। इंसान इंसान से प्रेम करे। यह तब ही हो सकता है जब प्रत्येक मनुष्य विपश्यना प्रारंभ करे। इसी से मानव का उद्धार हो सकता है।

"मैं तो यह ही कहूंगा कि ऊपर अंकित मर्जों की सबसे अचूक औषधि अगर है, तो सिर्फ 'विपश्यना'। महामहिम आचार्यजी से मेरा अनुरोध है कि आप प्रत्येक देश में विपश्यना शिविर लगाएं, देश के प्रत्येक कारागृह में एवं आम जनता के बीच भी। इसी में है सबका भला, सबका मंगल, सबका कल्याण। विपश्यना के बढ़ते हुए विकास की प्रबल इच्छाओं के साथ -

– मांगीलाल

[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

८ "मानव को एक नया जीवन देने अथवा अपने आपको सच्चे ज्ञान में उतारने को ही विपश्यना कहते हैं। इंसान अपने आपको भलीभांति खूब गहराइयों में देख सकता है - इससे मन शांत तथा एकाग्र होता है। मानव अपने अंदर-ही-अंदर यात्रा करे, अपने आपको सही रूप में देखे। मैंने अपने

मन को सारे शरीर में खूब घुमाया। पूरे शरीर तथा शरीर के अंगों में हर जगह चेतना हुई। हर अंग में हलचल पैदा हुई तथा उसे भलीभांति जाना और मन को ज्यादा गहराइयों में ले गये। मेरे दिल में कई प्रकार की बुरी भावनाओं - वैर, मोह, लालच की बहुत-सी परतें जमी हुई थीं जो कि विपश्यना करते-करतेअपने आप खुल कर साफ हो गयीं और वास्तव में मेरा मन बड़ा निर्मल हो गया। मुझे जीना आ गया। मैं वास्तव में बड़ा शांत हो गया। मुझे दस रोज के विपश्यना शिविर में जीवन जीने की विधि हाथ आयी है, इसे जिंदगीभर नहीं भूलूंगा और जहां भी मुझे शिविर में शामिल होने का मौका मिलेगा मैं उसमें जरूर शामिल होऊंगा। ऐसा सुखमय जीवन सबको मिले।

"सबके दुःख दूर हो जायं। ऐसे सभी लोग शांत हो जायं।"

– चिरंजीलाल

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

९ "गुरुदेव ने पांच शील दिलाये। उनका मैंने सही ढंग से पालन किया। उसके बाद आनापान की क्रिया तीन दिन तक चलती रही। बड़ा अजीब-सा लगा। परंतु जैसे-जैसे समय आगे बढ़ता गया, विपश्यना की क्रिया बतायी गयी। अपन ने तो बाहर-ही-बाहर देखा था। अब अपने अंदर देखा तो नाना प्रकार की अनुभूतियां हुईं। उसे देखते-देखते एकदम बदल गया और ऐसी शांति मिली कि दिल के सभी द्वेष निकलते हुए महसूस हुए। जीवन जीने का सही रास्ता प्राप्त हो गया। रास्ता सरल और सीधा है। थोड़ा मन एकाग्र करके अंदर देखा जाय तो मालूम हो जाता है कि इंसान आप ही अपनी बुराई करता है, दूसरा नहीं। विपश्यना से सभी राग-द्वेष खत्म हो जाते हैं। सच्चे धर्म पर चलने का यही रास्ता है। मुझे मेरी जिंदगी में नयी जिंदगी मिल चुकी है। इसी में औरों का भी मंगल, अपना भी मंगल। औरों का भी भला, अपना भी भला। औरों का भी कल्याण, अपना भी कल्याण। मेरा ऐसी धर्मगंगा में गोता लगा है कि मेरे पूर्वजन्म के अनेक संस्कार खत्म हो चुके हैं और जब तक जिंदा रहूंगा तब तक शेष खत्म हो जायेंगे। मैं अपने परिवार से, दोस्तों से, पड़ोसियों से, सभी से यही रास्ता जीने को कहूंगा।यही रास्ता

है जिससे नया जीवन मिल जाता है। इस कारागृह में आने से मुझे यह नया जीवन प्राप्त हुआ है।"

– गुलाबसिंह
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

१० "विपश्यना का सबसे बड़ा आकर्षण मुझे यही लगा कि सही जीने का रास्ता मिल गया है। यह दस दिन का कार्यक्रम बहुत ही मंगलकारी रहा, खासकर मेरे जीवन के लिए। क्योंकि अब तक राग-द्वेष की जो बिमारी थी वह अब खत्म हुई तथा किसी भी कार्य को जो अब तक भावावेश में करता रहा, अब सोचने की कला आ गयी है जो कोई सुनी या पढ़ी हुई नहीं है। यह सब मैंने अपनी अनुभूतियों से जाना है। अब तक पहले भी काफी शिक्षाप्रद बातें सुनी थीं लेकिन वह सब सुनी-सुनाई थीं। अब अध्यात्म अपने आप से जान लिया है।.....यह विपश्यना ऐसी नहीं जिसे लेकर कोई सांप्रदायिक बातें होवें। यह सबसे अच्छी विधि मानव के विचारों को बदलने के लिए है। इसमें सच्चे धर्म का ही वर्णन आता है जो हर जाति और हर समाज पर लागू होता है।

"इससे स्वास्थ्य में भी काफी लाभ हुआ है। जो मेरे मानसिक विकार थे, उनसे पूर्णतया अवकाश मिल गया है। अब कोई चिंता ही नहीं सताती।.....यही दिल में आता है कि सच्चे धर्म को हर मानव सीखे और प्रयोग में लाये - यही मेरी हार्दिक मंगल कामना है।"

– प्रेमशंकर
[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

११ "विपश्यना सीखना मानव को एक नया जीवन देना है। मानव अपने अंदर की गहराइयों को छोटे-छोटे टुकड़ों में देख सकता है। मानव का धर्म, याने कुदरत का सच्चा कानून, ही विपश्यना है। उसे सही रूप से देखना है। अपने चित्त को एकाग्र करना और फिर अपने शरीर की अंदरूनी यात्रा करनी, जो भी शरीर में अथवा शरीर के हिस्सों में हलचल हो उसके प्रति एकदम सचेत होना, उसको गहराई से देखना। इसी तरह देखते गये, चलते गये, पूरे शरीर की यात्रा करते गये। अपने दिल में जो बुराई थी, लालच थी,

मोह था और बुरी भावनाओं की जितनी परतें दिल में जमी हुई थीं, अपने आप सब छोड़ गयीं और मैं तो अपने अनुभव से कहता हूं कि मुझे बहुत ही शांति प्राप्त हुई है। इस साधना ने मन को शांत किया है तथा मन ने बुराइयों को तज दिया है। विपश्यना में बैठने से पहले पांच शील के व्रत धारण किये। इससे मन दृढ़ हुआ व अपने आपको भली-भांति गहराइयों से भी देखा। मन की आंखें खोल दीं। मन एकदम साफ हो गया। सचमुच एक नया जीवन मिल गया। मैं यह वायदा करता हूं कि मुझे यह जो विपश्यना के बारे में शिक्षा मिली है, इसे जिंदगी-भर करता रहूंगा। ऐसा मंगल सबका हो, ऐसा जीवन सबका हो जाय।.....मैं अपनी माताजी को, पत्नी को व बच्चों को भी यह विपश्यना सिखाऊंगा।"

– फतेहसिंह
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

१२ "इस दस रोज की साधना से मेरी मनोवृत्ति में काफी परिवर्तन हुआ। खुद को यह महसूस होता है कि कोई भी आदमी यदि अपने मन के मैल को साफ कर दे तो किसी प्रकार की बाधा में पड़े ही नहीं। विपश्यना साधना से मेरे मन में पहले से जो व्याकुलता रहती थी वह अब नहीं है। दूसरों के प्रति द्वेष-राग निकलने लगा है। मन को एकाग्र करने की विधि प्राप्त हो गई जो अपने किसी समय के पुण्य का फल है। दिन-पर-दिन कुछ-न-कुछ सुधार मन के अंदर हो ही रहा है। मन को एकाग्र करने से शरीर के भीतर का पता चलता है। जो भी प्रतिक्षण शरीर में संवेदना होती है उससे यह भी पता चलता है कि यह क्षण-भंगुर है। कभी-न-कभी सबको ही नष्ट होना है - क्यों किसी के प्रति द्वेष रखूं? मोह रखूं? जीवन जीने का रास्ता मिला है। कभी इस साधना को नहीं भूल सकूंगा।"

– मुन्नासिंह
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

१३ "यह साधना अंतःकरण के अंधकार को झकझोर कर एक प्रकार की अनोखी अनुभूति पैदा कर देती है। आंतरिक विकारों को दूर कर मानवमात्र में प्यार, करुणा व श्रद्धा की भावना, जो उसके मन में छुपे रूप से विद्यमान रहती है, उभारकर सामने ला देती है। इस साधना से मनुष्य के मन में छायी

हुई गंदगी उसके अहंकार के कारण भीतर-ही-भीतर उसे जकड़े रहती है उससे छुटकारा दिलाने में बहुत बड़ी सहायता प्रदान करती है।.....विपश्यना का उद्देश्य अपने को भलीभांति समझना है। प्रत्येक अवस्था में निरासक्त रहते हुए समभाव बनाये रखना और अहर्निश विपश्यना को जीवन में उतारना ही जीवन की सच्ची सार्थकता है। यह विपश्यना अपने आप में अप्रमेय है। जितनी गहराई से डुबकी लगायी जायगी, उसका परिणाम भी उतने स्पष्ट रूप से सामने आयगा।"

– विजयबहादुरसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

१४ "विपश्यना से अपने शरीर के अंदर की सभी संवेदनाओं को देखा तो जाना कि हम अपने शरीर में नये-नये संस्कार बनाते रहते हैं और उनकी पुष्टि करते रहते हैं। जब ये संस्कार हमारे शरीर में अपना घर कर लेते हैं तब हमें बेचैन बनाते हैं। तब हम दूसरों को दोष देते हैं। अब इस विपश्यना से यह अनुभव हो गया है कि अपने को दुःख देने व जलाने का काम हम स्वयं करते हैं। विपश्यना से हमें यह मालूम हुआ कि अपनी सत्यता को अंदर ही देखें। किसी को दोष न दें। विपश्यना बहुत ही लाभदायक है। यह शिविर हमें बहुत ही अच्छा लगा। शिविर में बैठे हुए मुझे ऐसा महसूस होता था कि मैं स्वर्ग में बैठा हूं। विपश्यना पूरी होने के बाद शरीर में से मंगल-मैत्री की तरंगें निकलने लगीं। उनमें प्यार-ही-प्यार था। मैं चाहता हूं कि सदा शिविर में रहूं और सच्चा धर्मी बनकर लोगों की सेवा करूं।"

– तेजसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

१५ "मुझे इस विपश्यना साधना से बहुत-बहुत लाभ हुए हैं। सारे शरीर का अनुभव हुआ। धड़कनें मालूम हुईं। अंदर के ज्ञान का अनुभव हुआ। दिल का मैल धुला। मन की गांठें खुलीं, सारा शरीर हल्का हुआ। फूल की तरह हल्कापन महसूस होने लगा। सारा ध्यान इस साधना में लगा। इस साधना से दिल को आनंद मिला। एक अद्भुत प्रेरणा मिली। दूसरों के प्रति प्रेम बढ़ा। प्रेम की प्रेरणा जागी और घृणा का नाश हुआ। प्रेम का उदय हुआ। शरीर की गंदी आदतों का या विकारों का अंत हुआ। शरीर का अंदर

का बंधन टूटा। सच्चे धर्म का ज्ञान हुआ। अच्छा जीवन बनाने की प्रेरणा मिली। अपना कल्याण मिला, दूसरों का कल्याण मिला। संकटों का रास्ता टल गया। सुख का रास्ता सामने आया। जीवन का अंधकार दूर हुआ और जीवन का प्रकाश मिला।"

– दौलतराम
[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

१६ "गुरुजी की शिक्षा आरंभ से ही बुद्धि में आने लगी। उसका उद्देश्य मन को एकाग्र करके दुःखों से छुटकारा पाने की जीवन जीने की कला सिखाना था।.....निरंतर जागरूक रहने के अभ्यास से दूसरे-तीसरे दिन शांति मिलने लगी। सभी अंगों के विकार संवेदना के रूप में बाहर आने लगे, तथा दिन-रात के अभ्यास से पुराने विकारोंसे छुटकारा पाकर सुख अनुभव करने लगा। रोज का कार्यक्रम सर्वथा मानवता में परिवर्तन लाने वाला रहा।.....वास्तव में विपश्यना कार्यक्रम एकदम ही मानव जीवन को परिवर्तित करने वाला है। शरीर के सारे दोष धो कर निर्मल कर देता है। नया-सा जीवन मिल गया। भविष्य के लिए सच्चा जीवन जीना सीख लिया। मानव के शत्रुओं से छुटकारा पाने की कला सीख ली।"

– बलबीरसिंह यादव
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

१७ "इस शिविर में अंतःकरण को शुद्ध बनाने का सनातन अभ्यास पुनर्जीवित कर अपने अंदर की समता की स्थिति को प्राप्त करना, मन के विकारों को एकाग्रचित्त होकर ढूंढना तथा विपश्यना के माध्यम से निकालकर बाहर फेंकना, यह इस शिविर के माध्यम से संपन्न हुआ अनूठा प्रयास है।

"दस रोज में इस शिविर से हमें अंदर की स्थिति को समझने का सुनहरा अवसर मिला। इस शिविर का उद्देश्य अंतर्मन के विकारों को बाहर निकालना और अपने मन को निरंतर स्वच्छ बनाये रखने का एक सुंदर प्रयास है। हम इस कैंप की प्रत्येक सच्चाई को और आगे बढ़ते देखना चाहते हैं जिससे कि बंदी-समाज का उत्थान होता रहे।"

– छितरलाल
[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

१८ "कैंप लगाने के बारे में सुना तब से ही मुझे बहुत खुशी होने लगी। इतनी खुशी कि मानो कोई रत्न मिलने वाला हो।.....समाप्ति के एक रोज पहले मंगल-मैत्री सिखायी गयी। उससे बहुत खुशी हुई। इस कैंप से मेरा दिल बहुत ही खुश हुआ। आज तक मुझे यह मालूम नहीं था कि इस दुनिया में अपने परिवार वालों से, दोस्तों से और दुश्मनों से किस तरह के व्यवहार से पेश आना चाहिए? जीवन किस तरह से जीना चाहिए? सो मैंने इस कैंप में जीना सीखा है। मेरा दिल करता है कि मैं यह धर्म मेरे पूरे परिवार को हासिल करवाऊं व सभी पड़ोसियों को राय दूं कि आप इस जिंदगी में जीना सीखने के लिए एक बार ऐसे कैंप में अवश्य जायं।"

– रूपसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

१९ "जैसे समुद्र में पानी की लहरें उठती, चलती और बढ़ती-घटती हैं, उसी प्रकार सिर से लेकर पांव की अंगुलियों तक चलती हुई नजर आयीं। विश्वास होता है कि ऐसा अभ्यास करने से जन्म-जन्म की पाप-पुंज की गांठें खुलकर दूर हो सकती हैं।.....हमारी सरकार ने विपश्यना का शिविर लगाकर हमारे ऊपर अति कृपा की है। इसके लिए बारंबार धन्यवाद है। आशा करते हैं ऐसे विपश्यना साधना शिविर और लगवाये जायं जिनमें हमें भाग लेने को मिले, जिससे हमारे पापों का निवारण हो।.....सरकार चाहे तो इंसान को हैवान बना सकती है और कैसा भी मूर्ख क्यों न हो उसको ऐसा ज्ञानवान चतुर इंसान भी बना सकती है।"

– संपत

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

२० "हमारे मन में दुश्मनों को नष्ट करने के लिए जो विचार उत्पन्न हुए थे वह गुरुजी के प्रवचनों से हमारे मन से जाते रहे। और अब हमारे मन में उनके प्रति मंगलभाव हैं। दुश्मनों का भी भला हो, मंगल हो।.....यह हमारे पूर्वजन्म के पुण्य होंगे जो आज हमें यह शुभ अवसर - धर्म के प्रति जागरूकता का आभास - मिला है।.....इसी तरह हमारे भाई जो दूसरी जगह जेलों में यातना पा रहे हैं उनका भी विपश्यना द्वारा कल्याण हो।"

– विष्णुदत्त शर्मा

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

२१ "गुरुजी ने हमको साधना सिखायी। उन्होंने हमको संप्रदायविहीन धर्म के बारे में बताया और अपनी मुक्ति तथा दुःखों से छुटकारा पाने की विधि सिखायी। हम अपने मन में शांति उत्पन्न करने लगे। जहां द्वेषभाव पैदा होता था, वह अब कभी भी पैदा नहीं हो सकता। हर आदमी के प्रति प्यार की भावना हमारे दिल में भर दी। हमें पांच शील दिया। हमें शांति मिली।"

– भवानीसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

२२ "मैंने कारागृह में लगे दस दिनों के शिविर में भाग लिया। शील का पालन एवं मानव-शत्रुओं से छुटकारा पाना सीखा। चित्त की एकाग्रता सीख कर शरीर की संवेदनाओं द्वारा विकारों को निकाल सका। अब इसका खूब अभ्यास करूंगा। सच्चे धर्म का मायना जाना तथा पूर्ण ज्ञान मिला। जीवन में सफलता मिली। सब को सच्चा सुख मिले। सब जीवन जीने की कला सीखें।"

– अमरसिंह

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

२३ "साधना-शिविर में भाग लेने से मानसिक शांति प्राप्त हुई। चिंताओं से मुक्ति मिली। शारीरिक विकास का भी यह एक अनुपम साधन है। चरित्र-निर्माण के लिए यह बहुत उपयोगी है। इससे विचार भी शुद्ध होते हैं।"

– मुकुंद बिहारी

[अपराध - हत्या; सजा - आजीवन]

२४ "ऐसा कैंप पहली बार मिला। इससे मेरी आत्मा को बहुत ज्यादा ज्ञान मिला। हमें अच्छे विचार करने की विधि प्राप्त हुई और मुक्ति का रास्ता मिला।"

– धर्मवीर सिंह

[अपराध - हत्या; सजा - बीस वर्ष]

पट ४

बुद्धवाणी सार्थक हुई

पिछले पट के अंतर्गत शिविर में भाग लेने वाले बंदी साधकों के अनुभव अंकित किये गये थे। इस पट में यह दिखलाने का प्रयास किया गया है कि साधकों के अनुभवों से बुद्धवाणी किस कदर सार्थक होने लगती है। वस्तुतः जो कोई नैसर्गिक सांस और शरीर पर प्रति पल होने वाली संवेदनाओं के आधार पर विपश्यना करने लगता है उसके मन में इस वाणी के अनुरूप विचारधारा स्वतः ही पनपने लगती है। भले ही साधक पढ़ा लिखा हो या अनपढ़, धारणाएं एक-सरीखी ही बनती हैं। यह विपश्यना की विशेषता है। ये बंदी साधक भी प्रायः कर बहुत कम योग्यता रखते थे, पर जो कुछ उन्होंने कहा है उससे बुद्धवाणी को प्रश्रय मिलना ही पाया जाता है।

❧❧❧❧

१ बुद्ध वचन

यो इमस्मिं धम्मविनये, अप्पमत्तो विहस्सति।
पहाय जातिसंसारं, दुक्खस्सन्तं करिस्सति॥

(संयुत्त० - १.१.१८५)

[जो इस धर्म-विनय में अप्रमत्त होकर विहरेगा वह जन्म-मरण के संसरण को छोड़ कर दुःख का अंत कर लेगा।]

बंदी साधक : बंदी श्रवणसिंह ने यह निष्कर्ष निकाला है कि यदि कोई मनुष्य 'लगातार' यह साधना करता रहे तो वह दावे के साथ 'मुक्ति' प्राप्त कर सकता है। भगवान की भी यह गारंटी है कि जो अप्रमत्त होकर यह काम करेगा वह निश्चय ही अपने दुःखों का भंजन कर लेगा। धन्य है यह बंदी साधक जिसकी समझ में इतनी बड़ी बात दस दिनों में ही आ गयी। उसके उद्गार बुद्धवाणी को सार्थक बनाने वाले हैं।

२ बुद्ध वचन

साधु सुविहितान दस्सनं, कङ्खा छिज्जति बुद्धि वड्ढति।
बालं पि करोन्ति पण्डितं, तस्मा साधु सतं समागमो॥

(थेर० - ७५)

[सत्पुरुषों का दर्शन भला होता है। (इससे) शंकाएं दूर होती हैं। बुद्धि बढ़ती है। वे मूर्ख को भी समझदार बना देते हैं। अतः सत्पुरुषों की संगत अच्छी होती है।]

बंदी साधक : बंदी प्रतापसिंह को गुरुजी की 'दिव्य मुस्कान' याद आ रही है। इससे उसका मन प्रफुल्लित हो उठता था। उसे लगता है कि वे 'ज्ञान के साक्षात भंडार' हैं। बुद्धवाणी भी कहती है कि सज्जनों का 'दर्शन' कल्याणकारी होता है। इससे मन के संशय दूर होते हैं और समझ में बढ़ोतरी होती है। इससे मूर्ख भी पंडित बन जाता है। अतः सज्जनों से समागम होना उत्तम होता है। धन्य है यह साधक जिसने अपने आचार्य के प्रति ऐसी धारणा बनायी है जो बुद्धवाणी को भी सार्थक करती है।

३ बुद्ध वचन

यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं अगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, अफला होति अकुब्बतो॥

यथापि रुचिरं पुप्फं, वण्णवन्तं सगन्धकं।
एवं सुभासिता वाचा, सफला होति कुब्बतो॥

(धम्मपद - ५१, ५२)

[जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त होने पर भी गंधरहित हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध-)वाणी होती है फलरहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) न करे।

जैसे कोई पुष्प सुंदर और वर्णयुक्त हो और (सु-)गंध वाला हो, वैसे ही अच्छी कही हुई (बुद्ध-)वाणी होती है फलसहित, यदि कोई तदनुसार (आचरण) करने वाला हो।]

बंदी साधक : बंदी हरफूलसिंह का कथन है कि यदि हम गुरुवचनों को 'केवल पढ़ने की बजाय जीवन में उतारें' तो हमारा जीवन बहुत ही सुखी हो सकता है। यह कथन बुद्धवाणी के अनुरूप ही है। ऊपर बताया गया है कि यदि अच्छी कही हुई वाणी (सुभाषित) के अनुसार आचरण न किया जाय तो उससे कोई फल प्राप्त नहीं होता, परंतु यदि तदनुसार आचरण किया जाय तो उसका सुफल प्राप्त होता ही है। गुरुजन अच्छी, हितप्रद बातें ही बतलाते हैं जिन्हें 'सुभाषित' कह सकते हैं। मेधावी है यह साधक जिसने गुरुवाणी को जीवन में उतारने के महत्त्व को समझ कर बुद्धवाणी को भी सार्थक बनाया है।

४ बुद्ध वचन

सब्बे सङ्खारा अनिच्चाति, यदा पञ्ञाय पस्सति।
अथ निब्बिन्दति दुक्खे, एस मग्गो विसुद्धिया॥

(थेर० - ६७६)

['सारे संस्कार अनित्य हैं' - इस (सच्चाई) को जब कोई प्रज्ञापूर्वक देखता है, तब दुःखों का निर्वेदन कर लेता है। यह विशुद्धि (विमुक्ति) का मार्ग है।]

बंदी साधक : बंदी झुनझुनराम की अभिव्यक्ति है कि 'अंतर्मुखी होकर झांकने से उनकी (अर्थात, पाप की) जड़ उखाड़ने का रास्ता मालूम हुआ'। उसका यह कथन निरी बुद्धवाणी है। पापों का संचय संस्कारोंके रूप में ही होता है। इन्हें प्रज्ञापूर्वक ,अर्थात संवेदनाओं के रूप में साक्षीभाव से, देखने से इनकी उदीरणा होकर इनकी निर्जरा होने लगती है। इन पापों से मुक्ति पाने का यही मार्ग है। इस प्रकार बंदी साधक का उपरोक्त कथन बुद्धवाणी को पुष्ट करने वाला है।

५ बुद्ध वचन

यथोदके आविले अप्पसन्ने, न पस्सति सिप्पिक सम्बुकं च।
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं, एवं आविलम्हि चित्ते।
न पस्सति अत्तदत्थं परत्थं॥

यथोदके अच्छे विप्पसन्ने, सो पस्सति सिप्पिक सम्बुकं च।
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं, एवं अनाविलम्हि चित्ते।
सो पस्सति अत्तदत्थं परत्थं॥

(जातक० - १.२.६९-७०)

[जैसे कोई व्यक्ति (सरोवर का) जल गदला, अस्वच्छ होने पर इसमें सीपी, शंख, कंकड़,बालू तथा मछलियों का समूह नहीं देख पाता है, वैसे ही चित्त मैला होने पर वह न तो अपना भला देख पाता है, न दूसरों का।]

[जैसे कोई व्यक्ति (सरोवर का) जल निर्मल, स्वच्छ होने पर इसमें सीपी, शंख, कंकड़,बालू तथा मछलियों का समूह देख पाता है, वैसे ही चित्त स्वच्छ होने पर वह अपना भला भी देख पाता है, दूसरों का भी।]

बंदी साधक : बंदी मांगीलाल इस साधना को अंतःकरण की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म बातों को जान लेने का 'एक्स-रे' बतलाता है। उसका कथन उचित ही है क्योंकि कोई भी व्यक्ति इसके माध्यम से अपने तन-और-मन का गहराइयों से अध्ययन कर भीतरी विकारों के उद्गम, स्थिति और अस्तगमन की जानकारी कर सकता है। जैसे-जैसे चित्त पर जमी हुई मैल की परतें दूर होती जाती हैं, वैसे-वैसे भीतर का प्रत्यवेक्षण अधिक गहराई से होने लगता है। प्रत्यवेक्षण की पैनी शक्ति विपश्यना से उपजती है। पानी गदला होने पर सरोवर के पैंदे की वस्तुओं की झलक तक पा सकना दुरूह होता है पर पानी स्वच्छ होने पर इसमें हर वस्तु साफ-साफ दिखलायी देने लगती है। इस प्रकार बंदी साधक का चिंतन बुद्धवाणी के अनुरूप ही है।

६ बुद्ध वचन

यो पाणमतिपातेति, मुसावादञ्च भासति।
लोके अदिन्नमादियति, परदारञ्च गच्छति॥

सुरामेरयपानञ्च, यो नरो अनुयुञ्जति।
इधेवमेसो लोकस्मिं, मूलं खणति अत्तनो॥

(धम्मपद - २४६, २४७)

[जो संसार में हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, परस्त्रीगमन करता है, मद्यपान (सुरा एवं मेरय का पान) करता है, वह व्यक्ति यहीं - इसी लोक में - अपनी जड़ खोदता है (अर्थात, अपना सर्वनाश कर लेता है)।]

सग्गारोहणसोपानं अञ्ञं सीलसमं कुतो।
द्वारं वा पन निब्बाननगरस्स पवेसने॥

(विसुद्धि० - १.९)

[शील के समान स्वर्गारोहण हेतु सीढ़ी और कौन-सी होगी? और ऐसे ही निर्वाण-नगर में प्रवेश करने का द्वार भी!]

बंदी साधक : बंदी कर्णसिंह का कथन है कि 'मुझे पंचशील बहुत ही अच्छे लगे। हर साधक को इनका पालन करना चाहिए।' बुद्ध की शिक्षा में शीलपालन का बड़ा महत्त्व है। उनके अनुसार शीलभंग करना अपना सर्वनाश करने के समान है। बुद्धवाणी के व्याख्याकार बुद्धघोष ने भी शील की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा है कि स्वर्गारोहण के लिए शील के इलावा और सीढ़ी कौन-सी होगी? और यही है निर्वाण-रूपी नगर में घुसने के लिए प्रवेश-द्वार। इस बारे में बंदी साधक ने जो निष्कर्ष निकाला है वह बुद्धवाणी को सार्थक बनाने वाला है।

७ बुद्ध वचन

'इध पनाहं, भन्ते, भिक्खू पस्सामि समग्गे सम्मोदमाने अविवदमाने खीरोदकीभूते अञ्ञमञ्ञं पियचक्खूहि सम्पस्सन्ते विहरन्ते।'

(मज्झिम० - २.४.३६८)

['भंते! मैं यहां पर देखता हूं विहार करते हुए भिक्षुओं (साधकों) को एकजुट, प्रमुदित, बिना विवाद करते हुए, पानी और दूध के मिश्रण के समान और एक-दूसरे को प्यारभरी दृष्टि से निहारते हुए।']

बंदी साधक : बंदी मांगीलाल का कहना है कि 'इंसान इंसान से प्रेम करे (और) यह तब ही हो सकता है जब प्रत्येक मनुष्य विपश्यना प्रारंभ करे।' बुद्धवाणी पर आधारित ऊपर प्रस्तुत किये गये उदाहरण से स्पष्ट

होगा कि पूर्वकालसे ही विपश्यना कियेहुए साधक एक-दूसरेसे हिल-मिल कर एक-दूसरे को प्यारभरी दृष्टि से निहारते हुए रहते आये हैं।

८ बुद्ध वचन

वायमस्सु च किच्चेसु, नालसो विन्दते सुखं।

(जातक० - २.१७.१२)

[कृत्योंमें उद्योग करे;आलसी व्यक्ति कोसुख प्राप्त नहीं होता है।]

बंदी साधक : बंदी चिरंजीलाल कहता है कि 'विपश्यना शिविर में मुझे जीवन जीने कीविधि हाथ लगी है। मैं इसे जिंदगीभर नहीं भूलूंगा। मुझे जहां भी शिविर में बैठने कामौकामिलेगा मैं उसमें जरूर शामिल होऊंगा। ऐसा सुखमय जीवन सब कोमिले।' इससे ऐसा आभास होता है कि यह साधक बड़ा उद्यमी है। वह आलस करने में विश्वास नहीं करता और समझता है कि यदि सच्चा सुख प्राप्त करना है तो आलस कोत्यागना ही होगा। बुद्धवाणी भी इसी सच्चाई कोउजागर करतीहै कि 'आलसी व्यक्ति कोसुख प्राप्त नहीं होता है।' धन्य है यह बंदी साधक जिसने बुद्धवाणी को आत्मसात कर इसे सार्थक घोषित किया है!

९ बुद्ध वचन

सग्गं सुगतिनो यन्ति, परिनिब्बन्ति अनासवा।

(धम्मपद - १२६)

[अच्छी गति वाले स्वर्ग-लाभ करते हैं और आस्रव-रहित हो जाने वाले परिनिर्वाण-लाभ।]

बंदी साधक : बंदी गुलाबसिंह काकथन है कि धर्मगंगा में गोता लगने से 'मेरे पूर्वजन्म के अनेक संस्कारखत्म हो गये हैं और जब तक जिंदा रहूंगा तब तक शेष खत्म हो जायेंगे।' भगवान बुद्ध ने प्रज्ञप्त कियाथा कि अच्छी गति होने से स्वर्ग-लाभ और सारे आस्रव नष्ट हो जाने पर परिनिर्वाण-लाभ होता है। यदि यह साधक भी नियमित रूप से साधना करताचला जायगा तो निःसंदेह देर-सवेर परम पद (निर्वाण) कासाक्षात्कार करही लेगा। जब तक इस स्थिति पर नहीं पहुँचेगा तब तक अच्छे-अच्छे

लोकों में उसकी सद्गति होती रहेगी। इस प्रकार के साधक पूर्वकाल में यह घोषणा करते पाये गये हैं कि –

'दुवे भवे संसरामि, देवत्ते अथ मानुसे।'

(थेरअप० - २.५५)

(अर्थात, मैं देवलोक अथवा मनुष्यलोक में संसरण करता हूं – अपाय गतियों में नहीं।)

इस प्रकार अपने संस्कारों के बारे में इस साधक का उद्घोष बुद्धवाणी को सार्थक ठहराता है।

१० बुद्ध वचन

छेत्त्वा रागञ्च दोसञ्च, ततो निब्बानमेहिसि।

(धम्मपद - ३६९)

[राग और द्वेष (रूपी बंधनों) का छेदन कर, फिर तुम निर्वाण को प्राप्त कर लोगे।]

बंदी साधक : बंदी प्रेमशंकर का कहना है कि 'अब तक राग-द्वेष की जो बीमारी थी वह खत्म हुई'। भगवान भी कहते हैं कि राग और द्वेष ही बंधन हैं; इनका छेदन हो जाय तो निर्वाण-लाभ हो जाय। यदि यह साधक भी नियमित रूप से विपश्यना का अभ्यास करता चला जायगा तो निःसंदेह देर-सवेर अमृत फल का आस्वादन कर ही लेगा - ऐसी आशा की जा सकती है।

११ बुद्ध वचन

मंसचक्खु दिब्बचक्खु, पञ्ञाचक्खु अनुत्तरं।
एतानि तीणि चक्खूनि, अक्खासि पुरिसुत्तमो॥

(इति० - ६१)

[मांसल चक्षु, दिव्यचक्षु और अद्वितीय प्रज्ञाचक्षु - इन तीन चक्षुओं का पुरुषोत्तम (भगवान बुद्ध) ने आख्यान किया है।]

बंदी साधक : बंदी फतेहसिंह का कहना है कि इस साधना ने उसकी 'मन की आंखें' खोल दी हैं। उसका कहना सही ही है क्योंकि विपश्यना का अभ्यास करते हुए वह प्रज्ञा का ही काम कर रहा था। प्रज्ञा को

'निब्बेधगामिनी' (बींधने वाली) कहा गया है। प्रज्ञा का काम करने से ही 'प्रज्ञाचक्षु' खुलते हैं। प्रज्ञाचक्षु ही मन की आंखें हैं। इन आंखों से हर काम समझदारी से निजी अनुभव के आधार पर किया जाता है। धन्य है बंदी साधक जिसने कल्याणकारिणी प्रज्ञा को अपने पर घटा कर इसकी असलियत को समझ कर इसे अपने शब्दों में प्रभावी ढंग से प्रख्यापित किया है।

१२ बुद्ध वचन

यतो च भिक्खु आतापी, सम्पजञ्ञं न रिञ्चति।
ततो सो वेदना सब्बा, परिजानाति पण्डितो॥

(संयुत्त० - २.४.२५१)

[जब कोई तपस्वी साधक संप्रज्ञान (प्रज्ञा पर आधारित शरीर वा चित्त-संबंधी संपूर्ण जानकारी) को कभी नहीं छोड़ता है, तब वह ज्ञानी (व्यक्ति) सभी प्रकार की संवेदनाओं को भली प्रकार जान लेता है।]

बंदी साधक : जब बंदी मुन्नासिंह यह इजहार करता है कि मैं 'कभी भी इस साधना को भूल नहीं सकूंगा,' उससे यह तात्पर्य भी लिया जा सकता है कि वह सदा संप्रज्ञान जगाये रखने का आदी हो गया है। हम साधना को भूलते तभी हैं जब हम उसे करना छोड़ देते हैं। यदि हम संवेदनाओं को अहर्निश जानने में लगे रहते हैं तो उन्हें भूल जाने का प्रश्न ही कहां पैदा होता है? और यह साधना संप्रज्ञान जगाये रखने, अर्थात लंबे समय तक अनित्यबोध के साथ संवेदनाओं की जानकारी बनाये रखने, की है। धन्य है बंदी साधक जो अपने भीतर संप्रज्ञान जगाये रख कर बुद्धवाणी को सार्थक बना रहा है।

१३ बुद्ध वचन

अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति।
उभयेनेव सो तादी, रुक्खं'व उपनिवत्तति॥

(सुत्त० - ७१७)

[यदि कुछ मिल जाय तो उत्तम है, और न मिले तो भी ठीक है। एक स्थान पर अवस्थित वृक्ष के समान वह दोनों ही अवस्थाओं में समान रहता है।]

बंदी साधक : बंदी विजयबहादुरसिंह ने 'प्रत्येक अवस्था में निरासक्त रहते हुए समभाव बनाये रखने' की बात कही है। उसका यह कथन ऊपर उद्धृत बुद्धवाणी से पूरी तरह मेल खाता है।

१४ बुद्ध वचन

ये केचि पाणभूतत्थि, तसा वा थावरा वनवसेसा।
दीघा वा येव महन्ता, मज्झिमा रस्सका अणुकथूला॥

दिट्ठा वा येव अदिट्ठा, ये व दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूता व सम्भवेसी व, सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्ता॥

(खुद्दक० - मेत्तसुत्त ४,५)

[इस लोक में जितने भी प्राणी हैं, फिर भले ही वे चल हों या अचल, लंबे हों या बड़े, मध्यम या ह्रस्व, स्थूल या सूक्ष्म, दिखायी देने वाले या न दिखायी देने वाले, दूर या समीप रहने वाले, जो यहां उत्पन्न हो चुके हैं या होने वाले हैं – ऐसे सभी प्राणी सर्वथा सुखी हों।]

माता यथा नियं पुत्तमायुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवं पि सब्बभूतेसु, मानसं भावये अपरिमाणं॥

(खुद्दक० - मेत्तसुत्त ७)

[जैसे माता अपने इकलौते पुत्र की, अपनी आयु देकर भी रक्षा करती है; वैसे ही साधक को सभी प्राणियों के प्रति यही पुत्रवत भावना अपरिमित रूप से करनी चाहिए।]

बंदी साधक : बंदी तेजसिंह का कहना है कि 'विपश्यना पूरी होने के बाद शरीर में से मंगल-मैत्री की तरंगें निकलने लगीं जिनमें प्यार-ही-प्यार था।' व्यवहार में पाया गया है कि वर्णित अवस्था में शरीर सचमुच एकदम हल्का हो जाता है और प्राणिमात्र के लिए मानस में प्यार-ही-प्यार उमड़ने लगता है। जैसा कि भगवान ने बतलाया है यह मैत्री अपरिमित होती है,

इसका कोई ओर-छोर नहीं होता है। जब बिना प्रयास किये स्वतः ही मन में मंगल-मैत्री जागने लगे, वह और भी अधिक प्रभावशाली होती है। धन्य है यह बंदी साधक जो अपने कारावास के काल में इस प्रकार की विलक्षण अनुभूति में से गुजर सका।

१५ बुद्ध वचन

चत्तारोमे, भिक्खवे, पुग्गला सन्तो संविज्जमाना लोकस्मिं। कतमे चत्तारो? तमो तमपरायणो, तमो जोतिपरायणो, जोति तमपरायणो, जोति जोतिपरायणो।

(अङ्गुत्तर० - १.४.८५)

[भिक्षुओ (साधको)! संसार में ये चार प्रकार के लोग होते हैं। कौनसे चार? (१) अंधकार से अंधकार की ओर जाने वाले, (२) अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाले, (३) प्रकाश से अंधकार की ओर जाने वाले, और (४) प्रकाश से प्रकाश की ओर जाने वाले।]

बंदी साधक : बंदी दौलतराम का कथन है कि 'जीवन का अंधकार दूर हुआ और जीवन का प्रकाश मिला'। 'जीवन का अंधकार' इस मायने में कि अपने पूर्व-जन्म के संस्कारों के कारण कारावास में आकर कष्टमय जीवन भुगतना पड़ रहा है और 'जीवन का प्रकाश' इस मायने में कि अब विपश्यना साधना सीख लेने से दुष्कर्म करने की प्रवृत्ति समाप्त होती जा रही है जिससे भविष्य उज्ज्वल है। इस प्रकार बंदी साधक बुद्धवाणी के अनुसार अंधकार से प्रकाश की ओर जाने वाले लोगों की श्रेणी में आता है जो एक महान उपलब्धि है। शिविरों के दौरान कल्याणमित्र गोयन्काजी इस प्रकरण को बड़े विस्तार से समझाते हैं।

१६ बुद्ध वचन

स्वाक्खातो भगवता धम्मो। (मज्झिम० - २.४.३६७)

[भगवान का धर्म सु-आख्यात (अर्थात, अच्छी प्रकार समझाया हुआ) है।]

बंदी साधक : बंदी बलबीरसिंह यादव का कथन है कि उसे 'आरंभ से ही गुरुजी की शिक्षा बुद्धि में आने लगी थी। शिक्षा का उद्देश्य था – मन

को एकाग्र कर दुःखों से छुटकारा पाने की जीवन जीने की कला सिखाना।' साधक ने अपनी बात सच ही कही है क्योंकि भगवान की वाणी के बारे में यह सुप्रसिद्ध है कि उनके द्वारा देशना किया गया धर्म 'सु-आख्यात', अर्थात अच्छी तरह समझाया हुआ, होता है जो हर किसी को हृदयंगम हो जाता है। कल्याणमित्र श्री गोयन्काजी भी उसी शैली से धर्म समझाते हैं। अतः उनकी शिक्षा के बारे में बंदी साधक की टिप्पणी सर्वथा सार्थक है। अंततोगत्वा उसके कथन से बुद्धवाणी की सार्थकता ही सामने आती है।

१७ बुद्ध वचन

सुखदुक्खे तुलाभूतो, यसेसु अयसेसु च।
सब्बत्थ समको होमि, एसा मे उपेक्खापारमी॥

(चरिया० - ३.१२२)

[मैं सुख-दुःख और यश-अपयश – इन सभी (अवस्थाओं) में तराजू की तरह समभाव रखता हूं। यह मेरी उपेक्षा पारमी है।]

बंदी साधक : बंदी छितरलाल ने इस शिविर में अंतःकरण को शुद्ध बनाने का अभ्यास करते हुए 'अंदर की समता की स्थिति प्राप्त करने' का उल्लेख किया है। भीतर की समता शरीर पर प्रकट होने वाली संवेदनाओं को उपेक्षाभाव से देखने से प्राप्त होती है। जब कोई व्यक्ति इस कार्य में परिपुष्टता प्राप्त कर लेता है तब यह भीतरी समता बाह्य जीवन में भी परिलक्षित होने लगती है। बुद्धवाणी से भी पता चलता है कि सुख-दुःख, यश-अपयश और मान-अपमान, जो चित्त को उद्वेलित किया करते हैं, उपेक्षाभाव के पुष्ट होने पर वैसा नहीं कर पाते हैं। तब तराजू पर रखी वस्तुओं के समान सुख और दुःख, यश और अपयश और इसी प्रकार मान और अपमान भी एक-सरीखे लगने लगते हैं। यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। धन्य है यह बंदी साधक जो विपश्यना के प्रत्यक्ष लाभ को बखूबी समझ गया है।

१८ बुद्ध वचन

सीलं समाधि पञ्ञा च, विमुत्ति च अनुत्तरा।
तेसु ञाणं उप्पादेत्वा, विहरामि सुखं अहं॥

(थेरअप० - १.४०.१८६)

[शील, समाधि, प्रज्ञा और अनुपम विमुक्ति - इनके प्रति ज्ञान जगा कर मैं सुखपूर्वक विहरता हूं।]

बंदी साधक : बंदी रूपसिंह को 'धर्म का व्यावहारिक पक्ष' विदित नहीं था। उसके कथनानुसार वह नहीं जानता था कि दुनिया में अपने परिवार वालों, दोस्तों और दुश्मनों से किस तरह के व्यवहार से पेश आना चाहिए। अब उसे पता चल गया है कि शील, समाधि और प्रज्ञा का सतत अभ्यास ही धर्म का व्यावहारिक स्वरूप है। दस-दिवसीय शिविर में उसने इन्हीं का अभ्यास किया है।

१९ बुद्ध वचन

उद्धं पादतला अम्म, अधो वे केसमत्थका।
पच्चवेक्खस्सुमं कायं, असुचिं पूतिगन्धिकं ॥

एवं विहरमानाय, सब्बो रागो समूहतो।
परिळाहो समुच्छिन्नो, सीतिभूताम्हि निब्बुता॥

(थेरी० - ३३-३४)

[हे मातः! पांव के तलवे से ऊपर की ओर, और केशतथा मस्तक से नीचे की ओर, इस अपवित्र, दुर्गंध देने वाली काया का प्रत्यवेक्षण कर। इस प्रकार चक्कर लगाने से मेरी सारी आसक्ति जड़ से उखड़ गयी। मानसिक ताप मिट गया। अब मैं निर्वाण प्राप्त कर शीतल हो गयी हूं।]

बंदी साधक : बंदी संपत भी 'सिर से पांव तक' शरीर का चक्कर लगाने की बात कहता है। उसे लगता है कि इससे जन्म-जन्म की पाप की गांठें खुलती हैं। उसका यह चिंतन सही है जैसे कि लगभग २,६०० वर्ष पूर्व की एक स्थविरी के ऊपर उद्धृत उद्गार से भी यही बात सामने आती है कि शरीर का चक्कर लगाते रहने से आसक्ति जड़ से उखड़ जाती है। वस्तुतः आसक्ति ही पाप की जड़ है। इससे बंदी साधक के मन में भी इस साधनाविधि की सार्थकता के प्रति श्रद्धा का भाव जागना स्वाभाविक ही है।

२० **बुद्ध वचन**

पुब्बे च कतपुञ्ञता ..... एतं मङ्गलमुत्तमं।

(खुद्दक० - मङ्गलसुत्त ४)

[पूर्व के संचित पुण्य ..... यह उत्तम मङ्गल है।]

बंदी साधक : बंदी विष्णुदत्त शर्मा की धारणा है कि यह जो 'शुभ अवसर' उसके जीवन में आया है यह उसके 'पूर्वजन्म का पुण्य' है। भगवान ने पूर्वजन्म के पुण्य को 'मङ्गल धर्म' की संज्ञा दी है। स्पष्ट झलकता है कि इस समय बंदी साधक का मांगलिक धर्म जागा है जिसने उसका चित्तविशोधनी विपश्यना साधना से मेल कराया है।

२१ **बुद्ध वचन**

सुकरं साधुना साधु, साधु पापेन दुक्करं।
पापं पापेन सुकरं, पापमरियेहि दुक्करं॥

(उदान - ४८)

[सज्जन द्वारा सत्कर्म करना बहुत सरल होता है, परंतु दुष्ट (पापी) जन द्वारा सत्कर्म करना सरल नहीं होता। इसी प्रकार पापी पुरुष द्वारा पापकर्म करना सरल होता है, परंतु आर्यजनों के लिए कोई पापकर्म करना बहुत ही कठिन होता है।]

बंदी साधक : बंदी भवानीसिंह को यह विश्वास हो गया है कि अब उसके मन में किसीके प्रति 'द्वेषभाव पैदा नहीं हो सकता'। ऐसा तभी संभव होता है जब मन का ऐसा स्वभाव बन जाय। जैसे पापी के लिए सत्कर्म कर पाना कठिन, वैसे ही सज्जन के लिए दुष्कर्म कर पाना कठिन -क्योंकि यह उनका स्वभाव बन गया होता है। इस प्रकार बंदी साधक का उद्घोष भी उसके जीवन में आये आमूलचूल परिवर्तन का परिचायक और बुद्धवाणी को परिपुष्ट करने वाला है।

२२ **बुद्ध वचन**

द्वेमानि, भिक्खवे, सुखानि। कतमानि द्वे? सामिसं च सुखं निरामिसं च सुखं। इमानि खो, भिक्खवे, द्वे सुखानि। एतदग्गं, भिक्खवे, इमेसं द्विन्नं सुखानं यदिदं निरामिसं सुखं। (अङ्गुत्तर० - १.२.६९)

[भिक्षुओ (साधको)! ये दो (प्रकार के) सुख होते हैं। कौन से दो? सामिष सुख और निरामिष सुख। भिक्षुओ! ये दो (प्रकार के) सुख होते हैं। इन दो (प्रकार के) सुखों में, भिक्षुओ!, यह जो निरामिष सुख है यही इनमें अग्र (श्रेष्ठ) होता है।]

अधिगच्छेय्य सुखं निरामिसं। (थेर० - ८५)

[निरामिष सुख को प्राप्त करे!]

बंदी साधक : बंदी अमरसिंह की मनोकामना है कि सबको 'सच्चा सुख' मिले। बुद्धवचन भी 'निरामिष सुख' की बात करते हैं। सामिष (भौतिक) और निरामिष (अभौतिक) सुखों में से निरामिष सुख को ही सहेजना चाहिए - यह एक स्थविर का वचन है। इसी में अपना सही कल्याण है। बंदी साधक का भी सच्चे सुख के बारे में चिंतन सराहनीय है जो बुद्धवाणी के सर्वथा अनुरूप है।

२३ **बुद्ध वचन**

१. पाणातिपाता वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

२. अदिन्नादाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

३. कामेसु-मिच्छाचारा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

४. मुसावादा वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

५. सुरा-मेरय-मज्ज-पमादट्ठाना वेरमणी सिक्खापदं समादियामि।

[१. मैं प्राणीहिंसा से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं। २. मैं चोरी से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं। ३. मैं व्यभिचार से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं। ४. मैं मिथ्या-वचन से विरत रहने की शिक्षा

ग्रहण करता हूं। ५. मैं शराब, मदिरा आदि नशे तथा प्रमादकारी वस्तुओं के सेवन से विरत रहने की शिक्षा ग्रहण करता हूं।]

बंदी साधक : बंदी मुकुंद बिहारी का कहना है कि 'चरित्र-निर्माण के लिए यह बहुत उपयोगी है।' विपश्यना शिविरों में हर साधक को साधना का अभ्यास शुरू करने से पहले शिविर के दौरान ऊपर अंकित पांच शीलों का दृढ़ता से पालन करने के लिए कहा जाता है। इससे जीवन में सच्चरित्रता की नींव पड़ती है। यदि कोई व्यक्ति जीवनभर इनका पालन करता रहे तो वास्तव में बड़ा चरित्रवान व्यक्ति बन जाता है। उससे कोई बड़ा गलत काम हो सके इसकी संभावना नहीं रहती है। अतः बंदी साधक का चिंतन एकदम सही एवं सराहनीय है।

२४ बुद्ध वचन

कायेन संवरो साधु, साधु वाचाय संवरो।
मनसा संवरो साधु, साधु सब्बत्थ संवरो।
सब्बत्थ संवुतो भिक्खु, सब्बदुक्खा पमुच्चति॥

(धम्मपद - ३६१)

[काय (शरीर) का संवर अच्छा है, अच्छा है वाणी का संवर। मन का संवर अच्छा है, अच्छा है सर्वत्र (इंद्रियों) का संवर। सर्वत्र संवर-प्राप्त भिक्षु (साधक) सारे दुःखों से मुक्त हो जाता है।]

बंदी साधक : बंदी धर्मवीर सिंह का कथन है कि 'हमें मुक्ति का रास्ता मिला है'। 'मुक्ति' से तात्पर्य है 'दुःखों से मुक्ति'। भगवान ने बतलाया है कि काय, वाणी और मन - इन सभी का संवर कर लेने से सारे दुःखों से छुटकारा हो जाता है। विपश्यना के शिविरों में यही सिखाया जाता है कि कैसे काय, वाणी और मन का संवर करके अपने भीतर राग न जगने दें, द्वेष न जगने दें, मोह न जगने दें। इस कार्य में जो-जो जितना-जितना पुष्ट होता जाता है उतना-उतना दुःखों से दूर होता जाता है। अतः बंदी साधक का यह कथन सारगर्भित है कि उसे 'मुक्ति (अर्थात, दुःखों से मुक्ति) का रास्ता मिला है'।

पट ५

मंगल-मृत्यु

[कल्याणमित्र का उद्‌बोधन]

मंगल-मृत्यु : [कल्याणमित्र के उद्‌बोधन का अंश]

(कल्याणमित्र श्री गोयन्काजी ने वर्ष १९९६ में महाराष्ट्र राज्य में नाशिक जेल के बंदियों एवं वहां के अधिकारियों को संबोधित किया था। इसमें जयपुर जेल में आयोजित हुए प्रथम शिविर की एक घटनाविशेष का भी उल्लेख है। अतः प्रासंगिक होने के कारण उसका वह अंश यहां उद्धृत किया गया है।)

❧❧❧❧

"मुझे याद है जयपुर जेल में पहला शिविर लगा था। शिविर लगाने वाले उस समय के 'होम सेक्रेटरी' श्री रामसिंह जी यहीं बैठे हैं। शिविर में कुछ लोग ऐसे थे जिनको मृत्युदंड दिया गया था। वे एक एक 'सिक्यूरिटी सेल (Security cell)' में बंद थे। उस समय जो प्रवचन होते थे उन्हें 'ब्राडकास्ट (broadcast)' किया जाता था। बहुत बड़ी जेल है जयपुर की। सब जगह आवाज जाती थी। ये मृत्युदंड-प्राप्त लोग शिविर में तो आ नहीं सकते थे। उनमें से एक सरदार था। उसने कहलवाया कि हमको यहां आकर कुछ सिखा दें।

"कितना सीख पायगा!

"लेकिन उस बेचारे को मृत्यु-दंड मिला है। कुछ दिनों के बाद तो उसे फांसी होने वाली है। तो मैं गया और उसे सिखा आया।

"जिस व्यक्ति को मृत्यु-दंड मिला हो, जरा सोच कर देखो उसके मन की क्या अवस्था होगी? कितना व्याकुल होगा! कितना व्याकुल!! खैर, उसे आनापान दे दी। और ऐसा हुआ कि तीन दिन के बाद तैयार हो गया और विपश्यना भी दे दी। बतलाते हैं कि जिस दिन उसे फांसी पर लटकाने के

लिए ले गये उस समय वह मुस्कुराता हुआ जाता है। कहता है - 'अरे! हमारा परलोक सुधर जायगा। हम मरने से डरने वाले नहीं।'

"कितना बड़ा परिवर्तन आया!

"कभी इस देश में (धर्मसम्राट अशोक के राज्य में) ऐसा होता था कि जो बंदी छोड़ने लायक हो उसे सुधार कर छोड़ा जाता था। जो छोड़ने लायक न हो –उसे दंड देना ही हो –तो वह जितना सुधर सके उतना सुधार कर फिर मृत्यु-दंड दिया जाता था। उनमें कितना बड़ा परिवर्तन आ जाता था! परिवर्तन तो आता ही है। यह विद्या ही ऐसी है।"

❦❦❦❦

समीक्षा

मृत्यु से भली प्रकार निपटने के लिए बुद्धवाणी में 'मरणानुस्मृति' का विधान है। इसके अंतर्गत विपश्यी साधक किसी भी समय प्राप्त होने वाली मृत्यु के बारे में सही प्रकार से चिंतन-मनन करता है। यदि यह चिंतन-मनन ठीक प्रकार से न किया जाय तो मृत्यु बड़ी कष्टप्रद और अपायगति की ओर ले जाने वाली भी हो सकती है। परंतु इसे ठीक प्रकार से किया जाय तो इसी जन्म में निर्वाण-लाभ भी हो सकता है और ऐसा न होने पर सुगति तो सुनिश्चित हो ही जाती है।

'मरणानुस्मृति' आठ प्रकार की होती है। यहां प्रसंगवश प्रथम प्रकार की अनुस्मृति का ही वर्णन किया जा रहा है। यह अनुस्मृति कहलाती है –'वधक पच्चुप्पट्ठान' (अर्थात, वधिक प्रत्युपस्थान) (=मानो वधिक पास खड़ा हो)। जैसे 'इसका सिर काटूंगा' – ऐसा सोच कर खड्ग लेकर इसे गर्दन पर चलाता हुआ वधिक पास ही उपस्थित हो, वैसे ही 'मृत्यु भी पास ही उपस्थित है' ऐसा अनुस्मरण करना चाहिए। क्यों? क्योंकि व्यक्ति की मृत्यु तो जन्म के साथ ही चली आती है (अर्थात, इसी के साथ सुनिश्चित हो जाती है) और कालांतर में तो केवल जीवन का हरणमात्र ही होता है।

मरणानुस्मृति का अभ्यास करने वाले विपश्यी साधक के मन में यदा-कदा निम्न प्रकार के विचार कौंधते रहते हैं –

न चत्थि सत्तो अमरो पथब्या। (जातक - १.१६.२६८)

[पृथ्वी पर कोई प्राणी अमर तो नहीं होता।]

सब्बे सत्ता मरिस्सन्ति, मरणन्तं हि जीवितं। (संयुत्त० - १.१.१३३)

[सारे प्राणी मृत्यु को प्राप्त होंगे, क्योंकि जीवन की इतिश्री मृत्यु में होती है।]

न हि सो उपक्कमो अत्थि, येन जाता न मिय्यरे।

(सुत्त० - ५८०)

[ऐसा कोई उपक्रम नहीं है जिससे जन्मे हुओं का मरण न हो।]

दहरा च महन्ता च, ये बाला ये च पण्डिता।
सब्बे मच्चुवसं यन्ति, सब्बे मच्चुपरायणा॥

(सुत्त० - ५८३)

[तरुण, बड़े, मूर्ख और बुद्धिमान सभी मृत्यु के वश में चले जाते हैं। सभी मृत्यु को प्राप्त होने वाले हैं।]

अच्चयन्ति अहोरत्ता, जीवितं उपरुज्झति।
आयु खीयति मच्चानं, कुन्नदीनं व ओदकं॥

(संयुत्त० - १.१.१४६)

[दिन-रात बीत रहे हैं, जीवन निरुद्ध हो रहा है। क्षुद्र नदियों के जल के समान मर्त्यों की आयु का क्षय हो रहा है।]

मरणे मे भयं नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।
सन्देहं निक्खिपिस्सामि, सम्पजानो पटिस्सतो॥

(थेर० - २०)

[न मुझे मरने का भय है, न जीने की कामना। (जब समय आयगा) मैं इस देह को स्मृति और सम्प्रज्ञान (जागरूकता और तटस्थता) के साथ त्याग दूंगा।]

उपट्ठितसति होमि, तासो मह्यं न विज्जति।

(थेरअप० - १.४०.१२९)

[मेरी सजगता बनी रहती है, मुझे कोई त्रास नहीं है।]

जब कोई व्यक्ति बड़े मनोयोग से विपश्यना का अभ्यास करने लगता है तब उसकी अपने जीवन के प्रति गहरी आसक्ति टूटने लगती है। यदि वह 'मरणानुस्मृति' का भी ठीक से अभ्यास करने लगे, तब तो यह प्रक्रिया और भी तेज हो जाती है। इस अनुस्मृति के गहन अभ्यास में लगे हुए साधक की तीनों संज्ञाएं ('अनित्य,' 'दुःख' एवं 'अनात्म') अत्यंत प्रबल हो जाती हैं और मृत्यु के क्षण को एक खिलवाड़-सा बना देती हैं। इसका एक प्रत्यक्ष उदाहरण तो बंदीभाई (सरदार गुरजंटसिंह) ही है जो हँसते-हँसते सूली पर चढ़ गया था।

पट ६

मंगल-धर्म

[एक समय भगवान बुद्ध ने गृहस्थों के लिए अड़तीस प्रकार के मंगल धर्मों का आख्यान किया था। इन मंगल धर्मों को अपनाने वाला कोई भी गृहस्थ अध्यात्म की ऊंची-से-ऊंची अवस्था प्राप्त कर सकता है। इन्हें बंदी जन के लिए भी विशेष रूप से उपयोगी समझते हुए इनका समावेश यहां किया गया है।]

असेवना च बालानं, पण्डितानञ्च सेवना।
पूजा च पूजनेय्यानं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[मूर्खों की संगति न करना, पंडितों (ज्ञानियों) की संगति करना और पूजनीय की पूजा करना – यह उत्तम मंगल है।]

पतिरूपदेसवासो च, पुब्बे च कतपुञ्ञता।
अत्तसम्मापणिधि च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[उपयुक्त स्थान में निवास करना, पूर्व जन्मों का संचित-पुण्य वाला होना और अपने आप को सम्यक रूप से समाहित रखना – यह उत्तम मंगल है]

बाहुसच्चञ्च सिप्पञ्च, विनयो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[अनेक विद्याओं को अर्जित करना, शिल्प-कलाओं को सीखना, विनीत होना, सुशिक्षित होना और (वार्तालाप में) सुभाषी होना – यह उत्तम मंगल है।]

माता-पितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[माता-पिता की सेवा करना, पुत्र-स्त्री (परिवार) का पालन-पोषण करना और आकुल-उद्विग्न न करने वाला (निष्पाप) व्यवसाय करना – यह उत्तम मंगल है।]

दानञ्च धम्मचरिया च, ञातकानञ्च सङ्गहो।
अनवज्जानि कम्मानि, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[दान देना, धर्म का आचरण करना, बंधु-बांधवों की सहायता करना और अनवर्जित कर्म ही करना – यह उत्तम मंगल है।]

आरती विरती पापा, मज्जपाना च संयमो।
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[तन-मन से पापों का त्याग करना, मदिरा-सेवन से दूर रहना और कुशल धर्मों के पालन में सदा सचेत रहना – यह उत्तम मंगल है।]

गारवो च निवातो च, सन्तुट्ठि च कतञ्ञुता।
कालेन धम्मस्सवणं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[(पूजनीय व्यक्तियों को) गौरव देना, सदा विनीत रहना, संतुष्ट रहना, दूसरों द्वारा किए गये उपकार को स्वीकार करना और उचित समय पर धर्म-श्रवण करना – यह उत्तम मंगल है।]

खंती च सोवचस्सता, समणानञ्च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[क्षमाशील होना, आज्ञाकारी होना, श्रमणों का दर्शन करना और उचित समय पर धर्म-चर्चा करना – यह उत्तम मंगल है।]

तपो च ब्रह्मचरियञ्च, अरियसच्चान दस्सनं।
निब्बानसच्छिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[तप, ब्रह्मचर्य का पालन करना, आर्य-सत्यों का दर्शन करना और निर्वाण का साक्षात्कार करना – यह उत्तम मंगल है।]

फुट्ठस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस्स न कम्पति।
असोकं विरजं खेमं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥

[(लाभ-हानि, यश-अपयश, निंदा-प्रशंसा और सुख-दुख इन) लोक-धर्मों के स्पर्श से जिसका चित्त कंपित नहीं होता, निःशोक, निर्मल और निर्भय रहता है – यह उत्तम मंगल है।]

एतादिसानि कत्वान, सब्बत्थमपराजिता।
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तमं॥

[इस प्रकार के कार्य करके (ये लोग) सर्वत्र अपराजित हो, सर्वत्र कल्याण-लाभी होते हैं। उन मंगल करने वालों के यही उत्तम मंगल हैं।]

[इन्हीं 'मंगल-धर्मों' का कल्याणमित्र गोयन्काजी द्वारा राजस्थानी में किया गया पद्यात्मक अनुवाद नीचे प्रस्तुत है।]

उत्तम मंगल

[कल्याणमित्र श्री गोयन्काजी की लेखनी से] (राजस्थानी में)

मूरख री संगत छुटणी, ग्यानी री संगत करणी।
पूजणै जोग रो पूजण, अ अ उत्तम मंगल है॥

सावळ देसां महँ बसणो, पिछला पुन्न साथै होणा।
मन अपणै बस महँ रखणो, अ अ उत्तम मंगल है॥

सीखणी सिल्प अर बिद्या, सीखणो बिनय रो बरतण।
बोलणां बचन सावळ ही, अ अ उत्तम मंगल है॥

सेवा मां री बापू री, पालण पतनी पुतरां रो।
बचणो खोटे करमां सूं, अ अ उत्तम मंगल है॥

दानी अर धरमी बनणो, निज कुल रो पालन करणो।
बरज्योड़ा काम न करणा, अ अ उत्तम मंगल है॥

पापां मँह रत ना रहणो, मदिरा सेवन सूं बचणो।
चेतै सूं धरम निभाणो, अ अ उत्तम मंगल है॥

गौरव करणो अर नमणो, बनणो कि रतग संतोसी।
उपदेस धरम रा सुनणा, अ अ उत्तम मंगल है॥

बण धीर' र आरयाकारी, सन्तां रा दरसण करणा।
बारता धरम री करणी, अ अ उत्तम मंगल है॥

तप ब्रह्मचर्य रो पालण, चार आर्यसत्य रा दरसण।
निरबाण धरम री साच्छी, अ अ उत्तम मंगल है॥

सुख-दुख बसंत पतझड़ सूं, चित जरा न विचलित करणो।
भय सोक मैल सूं बचणो, अ अ उत्तम मंगल है॥

इण धरमां रै पालण सूं, सरवत्तर बिजयी बण कर।
जो सुख सूं जीवै उण रा, अ ही उत्तम मंगल है॥

पट ७

शिविर के चित्र

जेल अधिकारियों के बीच

कल्याणमित्र गोयन्काजी तथा श्री रामसिंहजी

❦❦❦

शिविर की रूपरेखा का चिंतन करते

कल्याणमित्र गोयन्काजी तथा श्री रामसिंहजी

धर्मदेशना-रत

कल्याणमित्र गोयन्काजी तथा माताजी

राजस्थान के मुख्यमंत्री श्री हरिदेव जोशी

जिन्होंने जेल में शिविर लगाने की अनुमति प्रदान की

फिर से जाग उठी मुस्कान

अतीतं नानुसोचन्ति, नप्पजप्पन्ति नागतं।
पच्चुप्पन्नेन यापेन्ति, तेन वण्णो पसीदति॥

(संयुत्त० - १.१.१०)

[जो बीते हुए की सोच नहीं करते, भविष्य की उधेड़बुन में नहीं रहते, परिस्थिति अनुसार जीवन बिताते हैं – इससे चेहरा खिला रहता है।]

❦❦❦

(शिविरोपरांत)

कल्याणमित्र के सान्निध्य में बंदी साधक

(शिविरोपरांत)

कल्याणमित्र के सान्निध्य में बंदी साधिकाएं

❦❦❦❦

धर्म करे कल्याण!

सब्बे सत्ता सुखी होन्तु,
सब्बे होन्तु च खेमिनो।

सब्बे भद्राणि पस्सन्तु,
मा कि ञ्चि दुक्खमागमा॥

सारे प्राणी सुखी हों,
कुशलक्षेम से युक्त हों।

सब मंगलदर्शी हों,
कोई दुःखग्रस्त न हो॥

❦❦❦❦